भक्तियोग-साधन

: लेखक :

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

दिव्य जीवन सङ्घ प्रकाशन

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।

भक्तियोग-साधन

: लेखक :

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

: प्रकाशक :

दिव्य जीवन सङ्घ,
पो० शिवानन्दनगर—२४९ १९२,
जिला—टिहरी-गढ़वाल (उ० प्र०)

मूल्य] १९८१ [७-०० रुपये

डिवाइन लाइफ सोसायटी के लिए श्री स्वामी कृष्णानन्द जी द्वारा प्रकाशित तथा श्री गोपालसिंह जी द्वारा 'श्री कैलास विद्या प्रेस, ब्रह्मानन्द-आश्रम, मुनि-की-रेती, जिला टिहरी-गढ़वाल, पो० ऋषिकेश—२४९ २०१' में मुद्रित।

प्रथम (हिन्दी) संस्करण—१९४३

द्वितीय (हिन्दी) संस्करण—१९८१

३००० प्रतियाँ

—: प्राप्ति-स्थान :—

शिवानन्द पब्लीकेशन लीग,
डिवाइन लाइफ सोसायटी,
पो० शिवानन्दनगर—२४९ १९२,
जिला—टिहरी-गढ़वाल (उ० प्र०), हिमालय।

प्रकाशकीय वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक 'भक्तियोग-साधन' श्री स्वामी जी की प्रेरक पुस्तकों में अन्यतम है। इससे पूर्ववर्ती पुस्तकों की भाँति ही इस पुस्तक में भी स्वामी जी ने सरल, सहज तथा आध्यात्मिक ओजपूर्ण अनुपम भाषा का प्रयोग किया है। भक्ति-योग जैसे गहन और विशाल विषय का वैज्ञानिक विशुद्धता के साथ ऐसा सुन्दर तथा सर्वाङ्गीण आकलन करने वाली पुस्तकें आजकल इनी-गिनी ही हैं। भक्तियोग-साधन के प्रकाशन का यही प्रमुख कारण है, ऐसा बतलाने में हम वास्तव में गौरव अनुभव करते हैं।

स्वामी जी अपने सभी पाठकों को प्रेम विकसित करने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रेम की एक नन्हीं-सी किरण भी सम्पूर्ण दुःखों को दूर कर सच्चा सुख और आनन्द प्रदान कर सकती है।

यदि संयोगवश विश्व के कुछ देशों के तानाशाही लोगों के हाथ में यह पुस्तक पहुँच जाय और जिस भावना से यह सन्देश प्रकाशित किया है, उसी भावना से वे इसका अर्थ निरूपण करें तो वर्त्तमान विश्व में छाये हुए समस्त दुःख एक साथ ही मिट जायेंगे और इस भूतल पर एक बार पुनः स्वर्ग उतर आयेगा।

सर्व प्रेम के मूल-स्रोत, प्रेममूर्त्ति, राधावल्लभ तथा पतितो-द्धारक भगवान् कृष्ण युद्ध से आक्रान्त विश्व का कल्याण करें और उसे शान्ति, सुख, समृद्धि तथा दीर्घ जीवन युग-युग तक प्रदान करते रहें!

प्रस्तावना

इस पुस्तक 'भक्तियोग-साधन' में भक्ति का सारा महत्त्व-पूर्ण विषय हिन्दी-भाषी जनता के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसमें भक्ति-रस के अनेक रहस्यों का विवेचन है। इस पुस्तक में भक्ति-साधना के विषय पर अनेक व्यावहारिक सूचनाएँ और निर्देश दिये गये हैं।

यहाँ मैं इमर्सन के शब्दों को उद्धृत करता हूँ—"प्रतिदिन हमारे चारों ओर जो घटनाएँ घटित होती हैं, उन पर थोड़ा-सा विचार करने पर हम देखते हैं कि हमारी इच्छाओं से भी उच्चतर एक नियम है, जो इन सब घटनाओं का नियन्त्रण करता है। हम यह भी देखते हैं कि हम सामान्य तथा तात्कालिक कर्मों के लिए ही बलवान् हैं और हम उस नियम के प्रति आज्ञा-कारिता में सन्तुष्ट रह कर दिव्य बनते हैं। विश्वास और प्रेम— विश्वास समन्वित प्रेम ही हमें चिन्ताओं के महान् भार से मुक्त करेगा। भाइयो! भगवान् है। प्रकृति के केन्द्र में और प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाओं के ऊपर एक आत्मा है। अतः हममें से कोई भी व्यक्ति इस विश्व को हानि नहीं पहुँचा सकता। इस (आत्मा) ने प्रकृति में अपना मोहिनी-जाल इस दृढ़ता से फैला रखा है कि हम इसके आदेशों को स्वीकार करके ही प्रगति (उन्नति) करते हैं और जब हम इसके आदेशों की अवहेलना कर किसी प्राणी को आघात पहुँचाने का प्रयास करते हैं तो हमारे हाथ हमारे शरीर के साथ बँध-से जाते हैं अथवा वे हमारे ही वक्षस्थल को पीटते हैं। प्रकृति के सारे कार्य-कलाप हमें विश्वास का पाठ पढ़ाते हैं।"

: पाँच :

प्रेम, श्रद्धा और भक्ति के विना जीवन सर्वथा निरर्थक है। यह साक्षात् मृत्यु ही है। प्रेम दिव्य है। प्रेम इस विश्व की सबसे महान् शक्ति है। इसका प्रतीकार नहीं किया जा सकता। प्रेम ही मनुष्य के हृदय पर सच्ची विजय प्राप्त कर सकता है। प्रेम ही शत्रु को पराभूत करता है। प्रेम भयानक वन्य पशुओं को पालतू वना सकता है। इसकी शक्ति अनन्त है। इसकी गहनता अगाध है। इसकी प्रकृति अकथनीय है। इसकी महिमा अवर्णनीय है। प्रेम ही धर्म का सार है; अतः शुद्ध प्रेम का विकास कीजिए।

यहाँ प्रेम का, दिव्य प्रेम का और दिव्य जीवन के रहस्य का सन्देश है।

—स्वामी शिवानन्द

शिवानन्दनगर,
ऋषिकेश

विषय-सूची

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

भक्तियोग-साधन

प्रथम प्रकरण

भक्ति का स्वरूप

भक्ति परमेश्वर के चरण-कमलों से भक्तों के हृदय को बाँधने वाली सूक्ष्म प्रेम-रज्जु है। भगवान् के प्रति गहरी श्रद्धा और परम आसक्ति का नाम भक्ति है। ईश्वर के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है। वह प्रियतम के प्रति सहज उमड़ने वाली प्रेम-भावना है। वह शुद्ध, निस्स्वार्थ दिव्य प्रेम या शुद्ध प्रम है। वह प्रेम के लिए प्रेम है। उसमें लेशमात्र भी कामना या प्रतिफल की भावना नहीं है। उस उन्नत भावना का शब्दों में वर्णन करना सम्भव नहीं है। उसे तो भक्तों को निष्ठापूर्वक अनुभव करना होता है। भक्ति उत्कृष्ट भावनापूर्ण पवित्र, उच्चतर तरङ्ग है जो भक्त को भगवान् से मिलाती है। शाण्डिल्य ने पराभक्ति का अर्थ बताया है, ईश्वर के प्रति परम आसक्ति—'सा परानुरक्तिः ईश्वरे।' 'परा अनुरक्तिः' का अर्थ है ईश्वर का परम प्रेम, परम अनुराग। 'नारद-पञ्चरत्न' में उसकी व्याख्या की गयी है कि एकमात्र ईश्वर को ही 'अपना' अनुभव करना और किसी भी प्रापञ्चिक विषय के प्रति मोह न करते हुए उसी एक के विषय में गहरी प्रीति रखना। यह तो ईश्वर का अविभक्त प्रेम है जिसमें केवल वही एक अपना अनुभव किया जाता है।

कुछ अर्वाचीन भक्तिशास्त्रों में भक्ति और प्रेम में भेद बताया गया है। ईश्वर के प्रति सहज, स्वैच्छिक अनुराग भक्ति है। भक्त सर्वात्मना उसके वश में हो जाता है। वह उसमें लीन होता है। प्रेम भक्ति की चरम परिणति है। वह ईश्वर के प्रति एकान्तिक अनुरक्ति है जिसमें अनन्य आसक्ति भरी है और जो चित्त को पूर्णतया शुद्ध करती है। ईश्वर-प्रेम तो भक्ति की पूर्णता और परिणति है।

पति-पत्नी के बीच का प्यार शारीरिक है, स्वार्थी और दिखावा है। वह स्थायी नहीं है। वह तो खाली शारीरिक आकर्षण है। वह वासना की भूख है। उसमें निम्न भावना होती है। उसकी प्रकृति पाशवी है। वह क्षणिक है। इसके विपरीत दिव्य प्रेम चिरस्थायी है, पवित्र है, व्यापक और शाश्वत है। यहाँ सम्बन्ध-विच्छेद का प्रश्न ही नहीं उठता। सामान्यतः अधिकतर पति-पत्नी में पारस्परिक एकरसता रहती ही नहीं है। आजकल सावित्री और सत्यवान्, अत्रि और अनसूया बहुत ही दुर्लभ हैं। चूँकि पति-पत्नी सर्वथा केवल स्वार्थवश और अपने मतलब के लिए ही एकत्र होते हैं, इसलिए जैसे-तैसे हँसते-मुस्कराते हैं और उनमें बाह्य प्रेम ही होता है। सब दिखावा ही है। चूँकि वहाँ हृदय से हृदय का वास्तविक मिलन नहीं है, इसलिए सर्वदा एक प्रकार का सङ्घर्ष, रगड़, तनाव और कठोर वचन घर-घर में देखे जाते हैं। पत्नी की माँग के अनुसार पति उसके लिए कण्ठहार और रेशमी वस्त्र नहीं लाता है या चलचित्र दिखाने नहीं ले जाता है तो उस घर में बराबर झगड़ा और अनबन चलती रहती है। क्या इसे सच्चा प्यार कह सकते हैं ? यह तो उधारी, व्यापारीपन और सौदेबाजी है। काम-वासना के कारण लोगों ने अपनी प्रामाणिकता, स्वतन्त्रता और प्रतिष्ठा खो दी है। पुरुष नारी

के गुलाम हो गये हैं। यह कितना दयनीय दृश्य है। तिजोरी की चावी पत्नी के हाथ में है और पति को चार पैसे चाहिए तो उसे पत्नी के आगे हाथ पसारना पड़ता है। फिर भी वह मोहवश और वासना के मद में कहता फिरता है कि मेरी पत्नी बड़ी प्रेममयी है, मधुर है। वह तो साक्षात् मीरा है। वह पूजा करने लायक है।

विख्यात दार्शनिक राबर्ट जे० सङ्गरसोल प्रेम की व्याख्या निम्न शब्दों में करते हैं—

"जीवन की काली घटाओं के बीच प्रेम इन्द्रधनुष है। वह प्रातः और सायङ्काल का तारा है। वह शिशु के पालने पर चमकता है और नीरव कब्र पर अपना प्रकाश फैलाता है। वह कला की जननी है, कवि की प्रेरणा है, देशभक्त और दार्शनिक की स्फूर्त्ति है। उसने ही सर्वप्रथम अमरता का स्वप्न देखा। वह विश्व में मधुर तान भरता है; क्योंकि सङ्गीत प्रेम की वाणी है। वह हृदय-रूपी दिव्य पुष्प की सुगन्धि है। उसके विना हम हिंस्र पशु-तुल्य हैं और प्रेम के रहने से धरती स्वर्ग है और हम शिशु देवता हैं।"

भक्ति के भेद

भक्ति छः प्रकार की है—

(१) अपरा और परा भक्ति;

(२) रागात्मिका और विधि भक्ति;

(३) सकाम्या और निष्काम्या भक्ति;

(४) व्यभिचारिणी और अव्यभिचारिणी भक्ति;

(५) मुख्य और गौण भक्ति; तथा

(६) सात्त्विकी, राजसी और तामसी भक्ति।

रागात्मिका भक्ति को मुख्य भक्ति कहते हैं। परा भक्ति भी मुख्य भक्ति है। सकाम्या भक्ति गौण है। निष्काम्या, अव्यभिचारिणी या परा भक्ति अनन्य भक्ति कहलाती है।

अपरा भक्ति में भक्त नया होता है। वह कर्मकाण्ड और पूजा-पाठ करता है। वह घण्टी बजाता है, मूर्त्ति को चन्दन लगाता तथा पुष्प, अर्घ्य, नैवेद्य आदि समर्पण करता है। उसका हृदय विशाल नहीं होता। वह साम्प्रदायिक होता है। अन्य देवों के पूजकों को वह पसन्द नहीं करता।

परा भक्ति निर्गुण भक्ति होती है, जो तीनों गुणों से परे है। वह भगवान् के प्रति स्वेच्छाकृत और अखण्ड प्रेम-धारा है। वह सर्वथा अहैतुकी है। वह ईश्वर के प्रति अव्यवहित अर्थात् प्रतिबन्ध-रहित भक्ति है। इस प्रकार का भक्त ईश्वर की विभूतियाँ साक्षात् सामने आ जायें तो भी उनकी परवाह नहीं करता। वह तो परमेश्वर के चरण-कमलों की चाह में बैठा है। वह कैवल्य मुक्ति तक की चाह नहीं रखता। वह परमेश्वर की सेवा करना चाहता है। वह सदा हरि का दर्शन चाहता है। वह शुद्ध दिव्य प्रेम चाहता है। परा भक्ति का सर्वस्व और परिणति एकमात्र ईश्वर है।

परा भक्ति करने वाला भक्त सर्वगाही और सर्वसमावेशी होता है। उसमें विश्व-प्रेम होता है। उसके लिए सारा जग ही वृन्दावन है। पूजा के लिए वह मन्दिर में नहीं जाता। वह सर्वत्र ही अपने इष्टदेव को देखता है। वह समदृष्टि होता है।

वह किसी वस्तु से द्वेष नहीं करता। सर्प आये, दुःख और रोग या कोई भी कष्ट आये, उन्हें वह ईश्वर का सन्देशवाहक समझ कर उनका स्वागत करता है। उसका चित्त सर्वदा भगवान् के चरण-कमलों में लगा रहता है। उसका प्रेम तैलधारावत् अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होता रहता है। परा भक्ति ज्ञान ही है। यह भक्ति की पराकाष्ठा है। नामदेव, तुकाराम, रामदास, तुलसीदास और हफीज़ की भक्ति परा भक्ति थी।

रागात्मिका भक्ति में समाज के रीति-रिवाजों, रूढ़ियों तथा नियमों का वन्धन या आग्रह नहीं रहता है। उसमें किसी प्रकार का वन्धन नहीं होता है। उसमें दिव्य प्रेम का उन्मुक्त प्रवाह होता है। भक्त समाज की धारणाओं की लेशमात्र चिन्ता नहीं करता। वह समाज की आलोचनाओं से परे होता है। वह शिशु के समान सरल होता है। अपने प्रियतम या इष्टदेव के प्रति वह अपना प्रेम पूरे वेग से उँड़ेलता है। भक्त दिव्य प्रेम से मत्त होता है। विधि भक्ति में तो भक्त पूजा-पाठ और कई प्रकार के आचार-नियमों का पालन करता है। उसके लिए कुछ प्रतिवन्ध होते हैं। वृन्दावन की भोली गोपिकाओं और सन्त मीरा में रागात्मिका भक्ति थी। मीरा रानी थी, फिर भी उसने समाज, सगे-सम्वन्धी या अपने पति की रञ्चमात्र भी परवाह नहीं की। जव वह कृष्ण-प्रेम में मतवाली वन जाती थी तव सड़कों पर, लोगों की भीड़ में और कहीं भी नाचने लगती थी। सामान्य लोग उसके प्रेम की गहराई माप नहीं सकते थे। मीरा के हृदय-गह्वर की विशालता और कृष्णचन्द्र के प्रति अवाध प्रेम की गहराई का अनुमान सन्तजन भी नहीं कर पाते थे। श्रोताओं के नयनों को प्रेमाश्रु से तर कर देने वाले मीरा के भक्ति-गीत इस वात के प्रमाण हैं कि मीरा का हृदय कृष्ण-भक्ति-रूपी अमृत-रस में किस भाँति आप्लावित था।

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।' हरि-प्रेम में दीवानी मीरा को क्या कोई पूरी तरह से समझ सकता है!

सम्पत्ति की अभिलाषा से, पुत्र की कामना से, दुःख-निवृत्ति या रोग-मुक्ति के हेतु से ईश्वर की भक्ति करना सकाम्या भक्ति है। सकाम भक्ति क्रमशः निष्काम भक्ति में बदलती है। प्रह्लाद तो प्रारम्भ से ही निष्काम भक्ति करता था। ध्रुवकुमार केवल सकाम भक्ति करता था। प्रारम्भ में अपनी माता के कहे अनुसार राज्य हस्तगत करने की कामना से वह वन में गया, लेकिन हरि-दर्शन हो जाने के बाद उसकी भक्ति निष्काम बन गयी। उसकी सारी कामनाएँ नष्ट हो गयीं।

कुछ समय के लिए ईश्वर से प्रेम करना और कुछ समय के लिए पत्नी, पुत्र, धन-सम्पदा से प्रेम करना व्यभिचारिणी भक्ति है। ध्यान रहे कि सदा-सदा के लिए एकमात्र ईश्वर से प्रेम अव्यभिचारिणी भक्ति है।

सात्त्विक भक्ति में भक्त के अन्दर सत्त्वगुण की प्रधानता होती है। वह ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए, अपनी वासनाओं को समाप्त करने के लिए तथा इसी प्रकार के अन्य सदुद्देश्यों के लिए ईश्वर की उपासना करता है। ये तीनों प्रकार की भक्तियाँ गौण भक्ति हैं।

राजस भक्ति में भक्त के अन्दर रजोगुण की प्रबलता होती है। भक्त सम्पत्ति, धन, नाम और कीर्त्ति के लिए ईश्वर की भक्ति करता है।

तामस भक्ति में तमोगुण प्रबल होता है। भक्त में हिंसा, द्वेष, अहंभाव, असूया, क्रोध आदि गुण होते हैं। अपने शत्रु का संहार करने के लिए और अविहित मार्ग से किसी की

सम्पत्ति हस्तगत करने के लिए ईश्वर की पूजा करना तामस भक्ति है। चोर भगवान् से प्रार्थना करता है—'हे विनायक, आज रात को मुझे खूब धन मिले। तुझे सौ नारियल चढ़ाऊँगा।' यह तामस भक्ति है।

शाण्डिल्य ने भी परा और अपरा भक्ति का विभाजन किया है। परा भक्ति ईश्वरासक्ति है। वह अनन्य भक्ति है, ईश्वर के प्रति एकान्त भक्ति है, अनन्य भाव है। परा भक्ति मूलस्वरूप है, क्योंकि शेष सब भक्तियाँ इसकी अनुयायी हैं।

गीता (अ० ७-१६) के अनुसार भक्त चतुर्विध होते हैं—

"चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥"

हे अर्जुन ! उत्तम कर्म करने वाले अर्थार्थी आर्त जिज्ञासु और ज्ञानी ऐसे चार प्रकार के भक्तजन मेरे को भजते हैं। आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी की भक्ति अपरा भक्ति है, क्योंकि उनके मन में अपने भले की एक-न-एक कामना निहित है; परन्तु ज्ञानी की भक्ति शुद्ध और सर्वथा निष्काम होती है। वह परा भक्ति है। उसकी ईश्वर-भक्ति अनन्य और सम्पूर्ण होती है। वह अन्ततः उसमें लीन होता है। वह भगवान् का अत्यन्त प्रिय और उसके लिए भगवान् अत्यन्त प्रिय होते हैं। भगवान् कृष्ण कहते हैं—

"उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥"

(गीता : ७-१८)

—यद्यपि ये सभी उदार हैं, परन्तु ज्ञानी तो साक्षात् मेरा

स्वरूप ही है, ऐसा मेरा मत है, क्योंकि वह स्थिरबुद्धि ज्ञानी भक्त अति-उत्तम गतिस्वरूप मेरे में ही अच्छी तरह स्थित है।

प्रह्लाद आगे चल कर हरि के रूप में अपना ही ध्यान करने लगा। यह अभेद भक्ति है। यह भक्ति की पराकाष्ठा है।

जब भक्त भगवान् हरि, शिवजी, देवी, भगवान् राम और भगवान् कृष्ण की भक्ति करता है और यह मानता है कि हरि ही शिव है, देवी है, राम है, कृष्ण है, तो इसे समरस भक्ति कहते हैं। यह भी भक्ति की उन्नत स्थिति है। राम और कृष्ण में, शिव और हरि में, कृष्ण और देवी में वह कोई भेद नहीं करता। वह जानता है और अनुभव करता है कि राधा, सीता और दुर्गा भगवान् कृष्ण, राम और शिव की अभिन्न शक्तियाँ हैं।

नारद भी भक्ति के दो प्रकार बताते हैं—परा और अपरा। भक्त में निहित सत्त्व, रजस् और तमस् के अनुसार अपरा भक्ति के तीन प्रकार हैं या आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी के रूप में वह त्रिविध है।

जिस प्रकार कुर्सी, मेज, किवाड़, खाट आदि वस्तुओं में एक लकड़ी ही होती है; घड़ा, सुराही आदि विविध मृण्मय पदार्थों में एकमात्र मृत्तिका ही होती है उसी प्रकार इन सब दृष्टिगोचर नाम और रूप के अन्दर एकमात्र कृष्ण भगवान् विद्यमान हैं। यह अनन्य भक्ति है। परा भक्ति, अनन्य भक्ति अव्यभिचारिणी भक्ति—ये सब समान हैं, एक ही हैं।

द्वितीय प्रकरण

पञ्चदेवोपासना

मनुष्य में जो प्रमुख तत्त्व होता है उसके अनुरूप पाँच प्रकार की पूजा का पूर्व ऋषियों ने विधान किया है। वे हैं—गणेशपूजा शिवपूजा, हरिपूजा, शक्तिपूजा और सूर्योपासना। पृथ्वीतत्त्व प्रमुख है तो गणेशोपासना, जलतत्त्व प्रमुख है तो हरि-उपासना, अग्नितत्त्व प्रमुख है तो सूर्योपासना, वायुतत्त्व प्रमुख है तो शक्त्युपासना और आकाशतत्त्व प्रमुख है तो भगवान् शिव की उपासना।

व्यक्तिगत सामर्थ्य के अनुरूप उपासना का एक और प्रकार का विभाजन किया गया है। कुछ लोग भूत और प्रेतों की पूजा करते हैं। ये पूजक तामस होते हैं। कुछ लोग पितरों, ऋषियों और देवों की पूजा करते हैं। कुछ लोग राम, कृष्ण आदि अवतारों की पूजा करते हैं। कुछ लोग सगुण ब्रह्म की उपासना करते हैं। उच्च कोटि के साधक निराकार, निर्गुण, अव्यक्त और सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म की उपासना करते हैं जिसका प्रतिपादन उपनिषदों ने किया है। यह है पाँच प्रकार की पूजा।

पाँच प्रकार के भाव

भाव पाँच प्रकार के होते हैं—शान्तभाव, दास्यभाव, सख्यभाव, वात्सल्यभाव और माधुर्यभाव। प्रारम्भिक लोगों

के लिए दास्यभाव होता है। माधुर्यभाव सबसे कठिन है। वह वेदान्तिक साधना का एक प्रकार है। वह प्रियतम में एकरस हो जाना है। वात्सल्यभाव में शान्त, दास्य और सख्यभाव छिपे होते हैं। सख्यभाव में शान्त और दास्यभाव छिपे होते हैं। दास्यभाव में शान्तभाव छिपा रहता है।

तृतीय प्रकरण

नवधा भक्ति

भक्ति के और भी नौ भेद हैं : —

"श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

—भगवन्नाम का श्रवण करना, भगवान् के गुणों का बखान करना, उनके नाम का स्मरण करना, उनके चरणारविन्दों की शुश्रूषा करना, अर्चना करना, प्रणाम करना, मित्र-भाव से स्नेह रखना, सेवा करना, तथा पूर्ण रूप से उनकी शरण में जाना—ये भक्ति के नौ रूप हैं।"

पहली श्रवण-भक्ति है। हरिकथा, पुराण, और अध्यात्म निरूपण सुनना चाहिए। कर्ममार्ग, उपासनामार्ग, ज्ञानमार्ग, योग, वैराग्य, सिद्धान्तादि को सुनते रहना चाहिए। वेद, शास्त्र, पुराण और महावाक्यों का प्रवचन, भगवान् की दिव्य लीला, गुण और माहात्म्य सुनना चाहिए। सब-कुछ सुन कर बुद्धिमान् मनुष्य सार को ग्रहण कर ले और असार को छोड़ दे।

दूसरी कीर्त्तन-भक्ति है। भगवान् के नाम, गुण, लीला आदि का गान करना कीर्त्तन कहलाता है। भगवान् को कीर्त्तन बहुत प्रिय है। कीर्त्तन से समाधान होता है। कलियुग में अधिकतर लोगों को हरि-कीर्त्तन ही तारता है। भगवान् के गुणों का कीर्त्तन करने से बड़े-बड़े पाप कट जाते हैं और उत्तम गति मिलती है। कीर्त्तन से वाणी पवित्र होती है, सत्पात्रता

आती है और सारे मनुष्य सुशील बनते हैं। कीर्त्तन से मन की चञ्चलता जाती है और बुद्धि स्थिर होती है। अत्यन्त प्रेम और रुचि के साथ सदा-सर्वदा हरिकीर्त्तन के लिए तत्पर रहना चाहिए।

तीसरी भक्ति हरिस्मरण है। मन में ईश्वर का स्मरण करना एवं उनके अनन्त नामों का अखण्ड रीति से जप करना चाहिए। नित्य नियम के साथ और सदा-सर्वदा नाम-स्मरण करना चाहिए। चलते, बोलते, काम करते, खाते-पीते, सुखी होते, दुःख और सङ्कट के समय नाम-स्मरण ही करते रहना चाहिए। इससे चित्त को समाधान मिलता है। भगवान् के नामों का स्मरण करने से सङ्कट कटते हैं, विघ्न दूर होते हैं और सद्गति मिलती है। नाम-स्मरण की महिमा अगाध है, अवर्णनीय है। इसके द्वारा बहुत लोग मुक्त हो गये हैं।

चौथी भक्ति पाद-सेवन है। भगवान् के चरणों की पूजा, सन्त-महात्माओं के चरणों की सेवा और भगवत्स्वरूप सद्गुरु के चरणों की सेवा पाद-सेवन कहलाती है। भगवान् के चरणों का श्रद्धापूर्वक दर्शन, चिन्तन और पूजन करते-करते भगवत्प्रेम में तन्मय हो जाना भी पाद-सेवन कहलाता है। इस पाद-सेवन-भक्ति से भी मनुष्य के सारे दोष, दुर्गुण और दुःख नष्ट हो जाते हैं। भगवान् के चरणोदक का पान करने और उसे मस्तक पर धारण करने से भी कल्याण होता है।

पाँचवीं भक्ति का नाम अर्चना है। शास्त्रों के अनुसार भगवान् का पूजन करना चाहिए। देव, ब्राह्मण और अग्नि की पूजा, साधु, सन्त और अभ्यागत की पूजा अर्चना-भक्ति है। परम श्रद्धा और प्रेम के साथ भगवान् की पूजा की जाय तो वे

स्वयं अपने दिव्य स्वरूप में प्रकट हो कर भक्त के निवेदन किये हुए पदार्थ को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार तन, मन, धन और सद्भाव से भगवान् का पूजन करना चाहिए।

छठी भक्ति वन्दना है। ईश्वर, सन्त, साधु और सज्जनों को नमस्कार करना अथवा समस्त चराचर भूतों को परमात्मा का स्वरूप समझ कर शरीर या मन से प्रणाम करना और ऐसा करते हुए भगवत्प्रेम में मुग्ध हो जाना वन्दना-भक्ति है।

भगवान् के अनेक भक्त इस प्रकार नमस्कार करके ही परमपद को प्राप्त हो गये। सब देवताओं को जो नमस्कार किया जाता है वह एक भगवान् को ही मिलता है। नमस्कार से नम्रता आती है, दोष दूर होते हैं, कृपा उमड़ती है और प्रसन्नता बढ़ती है। नमस्कार से पापों के पर्वत नष्ट होते हैं और परमेश्वर कृपा करता है। नमस्कार करने में कुछ खर्च नहीं पड़ता, कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता और न किसी सामग्री की ही आवश्यकता होती है। संसार से छूटने के लिए नमस्कार के समान और कोई सहज उपाय नहीं है।

सातवीं भक्ति दास्यभक्ति है। मन्दिरों में भगवान् की मूर्त्ति की सेवा करना, सम्पूर्ण चराचर को प्रभु का स्वरूप समझ कर सबकी यथाशक्ति, यथायोग्य सेवा करना और जो कर्म भगवान् की प्रसन्नता और इच्छा के अनुकूल हों उन्हीं कर्मों को करना दास्यभक्ति है। सब कामों के लिए तैयार रहना चाहिए, भगवान् की नीच-से-नीच सेवा भी अङ्गीकार करनी चाहिए। सबको चाहिए कि भगवान् के प्रेम में विह्वल हो कर तन, मन, धन सब-कुछ अर्पण करके भगवान् की दास्यभक्ति करें।

आठवीं भक्ति सख्यभक्ति है। इसका मुख्य लक्षण यह है कि परमात्मा को परम मित्र बना कर प्रेम और प्रीति से वश में कर

लेना चाहिए। परमेश्वर से मित्रता करने के लिए जो-जो बातें उन्हें अच्छी लगती हों उन्हीं के अनुसार आचरण करना चाहिए। भक्ति-भाव, भजन, कथा तथा कीर्त्तन परमेश्वर को अच्छे लगते हैं। यही सब बातें हमें भी करनी चाहिए। हमें भी यही अच्छी लगनी चाहिए। इससे भगवान् का और हमारा मन मिल जायेगा और बस दोनों की मित्रता सहज ही हो जायेगी; परन्तु परमात्मा की मित्रता प्राप्त करने के लिए हमें अपने सारे सुखों को त्याग देना होगा और अनन्य भाव से मन, प्राण तथा शरीर तक उन्हें अर्पण कर देना होगा। ऐसी परम मित्रता होने पर परमेश्वर को भक्त की चिन्ता होती है। मित्रता करनी है तो सच्ची ही करनी चाहिए। परमेश्वर को दृढ़तापूर्वक हृदय में रखना चाहिए। अपनी इच्छा पूर्ण न होने पर ईश्वर पर क्रोध करना सख्यभक्ति का लक्षण नहीं है। भगवान् की इच्छा के अनुकूल बरताव करना भक्त का कर्त्तव्य है और वे जो-कुछ करें उसे स्वीकार करना चाहिए, इससे वे सहज ही दया करते हैं। ईश्वर की मित्रता कभी नहीं छूटती, उनके प्रेम में कभी अन्तर नहीं पड़ता और शरणागत को वे कभी नहीं त्यागते। इस सख्यभक्ति के उदाहरण विभीषण, सुग्रीव, उद्धव, अर्जुन, सुदामा और व्रजसखा हैं। इसलिए भगवान् को ही अपना परम मित्र मान कर उनसे सख्यभक्ति करनी चाहिए।

नवीं भक्ति आत्मनिवेदन है। भक्त की इच्छा भगवान् की इच्छा में लीन हो जाती है। भक्त भगवान् के साथ तद्रूप हो जाता है और भगवान् के सारे दिव्य ऐश्वर्यों को भोगता है। आठों सिद्धियाँ और नवों निधियाँ उसके चरणों में लोटती हैं। वे भक्त के आगे हाथ जोड़े हुए उसकी आज्ञा पालन करने के लिए तत्पर खड़ी रहती हैं। भक्त अपने शरीर के रोम-रोम में

और अणुमात्र में अपने राम और श्याम का दर्शन करता है। यह दशा अचिन्त्य और अनिर्देश्य है; क्योंकि भक्त का अहङ्कार पूर्णतया नष्ट हो चुका होता है, इसलिए भगवान् स्वयं भक्त की इन्द्रियों द्वारा वोलते और कार्य करते हैं। कामना और अहङ्कार आत्मनिवेदन के वाधक हैं। आत्मनिवेदन सम्पूर्ण विना शर्त के और विना किसी वचाव के होना चाहिए। कभी-कभी भक्त कुछ कामनाओं को अपनी तृप्ति के लिए वचा रखता है। इसी कारण वह पूर्ण आत्मसमर्पण नहीं कर पाता और उसको इष्ट-देवता का दर्शन नहीं होता। अहङ्कार वड़ा कठोर और दुर्दम्य होता है। वह पत्थर के समान कठोर होता है। भक्तिरूपी छेनी के द्वारा निरन्तर हथौड़े से ठोक कर इसे तोड़ा जाता है। हार वनाने के लिए हीरे में भी किसी मसाले से सूराख कर दिया जाता है और उसमें एक पतला तार पिरो दिया जाता है। इसी प्रकार इस कठोर अन्तःकरण में आत्मनिवेदन के द्वारा छेद करके भक्तिरूपी पतला डोरा पिरोया जाय तभी भगवान् रामचन्द्र अपने भक्त के हृदय में विराजेंगे।

भक्त यह भी आशा करता है कि उसके लिए आत्मनिवेदन भी भगवान् ही कर लें। यह निरी मूर्खता ही है। इसको भली-भाँति याद रखना चाहिए कि उसे आत्मनिवेदन स्वयं ही करना पड़ेगा।

तमोगुण या अकर्मण्यता को भूल से आत्मनिवेदन मान लिया जाता है। पातञ्जल योगसूत्र में लिखा है—'**ईश्वरप्रणिधा-नाद्वा।**" भगवान् के चरणों में अपने को और कर्मों के फल को समर्पण कर देने से समाधि प्राप्त हो सकती है। आत्मनिवेदन क्रियायोग के तीन अङ्गों में से एक है। "**तपःस्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि क्रियायोगः**" अर्थात् तप करना, स्वाध्याय करना

ग्रौर ग्रात्मनिवेदन करना क्रियायोग है। पुनश्च, ग्रात्मनिवेदन पाँच नियमों में से एक है। क्रियायोग से पाँचों क्लेश नष्ट हो जाते हैं ग्रौर मन ईश्वर-प्राप्ति के लिए उपयुक्त हो जाता है।

गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है—

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
ग्रहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

—सारे धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण में ग्रा जा; चिन्ता मत कर, मैं तुझे सारे पापों से छुड़ा दूँगा।" यदि कोई भक्त इस श्लोक के भाव को निरन्तर ग्रपने मन के सामने रखता है तो उसे ग्रात्मसमर्पण करने में यह शक्तिशाली मन्त्र बहुत सहायता करता है। इसी से मिलता-जुलता शरणागति-मन्त्र राम-भक्ति के लिए **'श्रीरामः शरणं मम'**, कृष्ण-भक्ति के लिए **'श्रीकृष्णः शरणं मम'** ग्रौर हरि-भक्ति के लिए **'श्रीमन्नारायणं शरणं प्रपद्ये'** हैं। जो इन मन्त्रों को भाव-सहित जपते रहेंगे उन्हें जल्दी परमात्मा की कृपा प्राप्त होगी। वे पूर्ण ग्रात्मसमर्पण कर सकेंगे। **'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'** यह भी शरणागति-मन्त्र है। यदि ग्राप इसे भाव-सहित जपेंगे तो भगवान् कृष्ण की दया जल्दी हो जायगी।

नीचे लिखे सूत्रों को बोलते रहने से भी ग्रापको पूर्ण ग्रात्मसमर्पण करने में सहायता मिलेगी :

"हे प्रभु! मैं ग्रापका हूँ, सब-कुछ ग्रापका है, ग्रापकी इच्छा पूर्ण हो।"

यदि एक बार भी ग्रान्तरिक सच्चे हृदय से एकाग्र चित्त हो कर ग्रपना शत-प्रतिशत मन लगा कर कहें, 'हे भगवान्, मैं ग्रापका हूँ' तो जो खाई ग्रापको परमात्मा से ग्रलग रखती है

उस पर तुरन्त ही पुल वन जायेगा। आत्मसमर्पण करने के लिए मन, चित्त, बुद्धि और अहङ्कार सबको एक साथ मिलना चाहिए; तभी सच्चा और पूरा आत्मसमर्पण होगा। यदि मन कहता है 'भगवान् मैं आपका हूँ' और यदि बुद्धि कहती है—'मैं श्रीयुत अमुक महाशय हूँ, मैं धारा-सभा का सदस्य हूँ, मैं सब-कुछ जानता हूँ, मैं शक्तिशाली जज हूँ' और चित्त कहता है कि 'मुझे इच्छानुसार वस्तु प्राप्त कर लेने की सिद्धि चाहिए' और आत्मा कहती है कि 'मैं वड़ा भक्त हूँ' तो आप निरे पाखण्डी हैं। आपने किसी प्रकार का आत्मसमर्पण नहीं किया है। नैतिक और आध्यात्मिक अहङ्कार से सचेत रहें। संसारी मनुष्यों के धन, शक्ति और पद के अभिमान से साधकों का नैतिक और आध्यात्मिक अभिमान कहीं अधिक भयङ्कर होता है।

चतुर्थ प्रकरण

आत्मसमर्पण का रहस्य

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥

—जो व्यक्ति एक भी बार मेरी शरण आ जाते हैं तथा 'मैं तुम्हारा हूँ' कह कर प्रार्थना करते हैं, उनको मैं अभय दान देता हूँ; यह मेरा व्रत है।"

(श्री रामचन्द्र का सङ्कल्प)

सम्पूर्ण गीता में एक ध्वनि गुञ्जरित होती है। वह यह है कि भगवद्दर्शन के लिए भक्ति और शरणागति की अपरिहार्य आवश्यकता है। वस्तुतः नौ प्रकार की भक्तियों का केवल 'आत्म-निवेदन' में ही समाहार किया जा सकता है। गीता के निम्न श्लोकों से सिद्ध होता है कि भक्ति तथा शरणागति कितनी महत्त्वपूर्ण साधना है।

"तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

(गीता : १८-६२)

—हे भारत! सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो। उस परमात्मा की कृपा से ही परम शान्ति और सनातन परम धाम को प्राप्त होओगे।"

'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

(गीता : १८-६५)

— मुझमें चित्त स्थिर करो, मेरे भक्त बनो, मेरा भजन करो और मुझे प्रणाम करो, तो निश्चित ही मुझे प्राप्त होओगे। यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है। तुम्हें अपना प्रिय समझ कर कह रहा हूँ।"

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गीता : १८-६६)

—समस्त धर्मों का परित्याग कर, एकमात्र मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें सब पापों से मुक्त कर दूँगा। शोक मत करो।"

गीता के अठारहवें अध्याथ के ६५ तथा ६६वें श्लोक इसके अत्यन्त प्रमुख श्लोक हैं। इनमें श्रीकृष्ण के उपदेशों का सार-सर्वस्व समाहित है। इन श्लोकों के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति अपने लक्ष्य को अवश्यमेव प्राप्त करेगा। इसमें रञ्चमात्र भी सन्देह नहीं है।

शरणागति अशेष, अनन्य और सर्वात्म होनी चाहिए। किसी प्रकार की इच्छापूर्ति की कामना नहीं रखनी चाहिए। मीरा कहती है : "मैंने तो अपने गिरिधर गोपाल को अपना मन, बुद्धि, आत्मा सब दे दिया है।" यह अशेष शरणागति है।

सच्चा भक्त ईश्वर से मुक्ति की भी याचना नहीं करता है। मन में मुक्ति की भी लेशमात्र इच्छा शेष रहते हुए वह अपने-आपको प्रभु का सच्चा भक्त नहीं कह सकता है। मुक्ति की कामना सात्त्विक कामना होते हुए भी भक्त मुक्ति का दास बन जाता है। उसमें अभी स्वार्थ बाकी है; अतः वह अपने को नैष्ठिक ईश्वर-प्रेमी नहीं कह सकता है। अभी तक उसने परि-पूर्ण और निःशेष समर्पण नहीं किया है। मुक्ति की याचना एक प्रकार का दम्भ ही है। क्या कोई सच्चा भक्त यह जानते हुए भी कि भगवान् करुणा और दया-सागर हैं. उनसे कुछ याचना कर सकता है ?

वास्तविक भक्त कभी किसी वात के लिए भगवान् की शिकायत नहीं करता। कच्चा भक्त ही कठिनाई में पड़ते ही भगवान् की निन्दा करने लगता है कि 'मैंने पचीस लाख जप किया, प्रतिदिन भागवत का पाठ करता रहा; फिर भी ईश्वर प्रसन्न नहीं हुआ; मेरा दुःख दूर नहीं किया। वह अन्धा है। मेरी प्रार्थना सुनता नहीं है। कृष्ण भी कैसा है ! उस पर मेरा विश्वास नहीं रहा।'

सच्चे भक्त को दुःख तथा कष्ट में भी सुख ही मिलता है। अतः वह दुःख की ही कामना करता है, जिससे एक क्षण भी भगवान् का विस्मरण न हो। उसे यह पूर्ण विश्वास होता है कि भगवान् जो-कुछ करता है भले के लिए ही करता है। कुन्ती देवी ने श्रीकृष्ण से यह प्रार्थना की थी—

"विपदः सन्तु नः शश्वत् यासु सङ्कीर्त्यते हरिः।"

हमें सर्वदा ही विपत्ति का सामना करना पड़े जिससे सदैव हरि-स्मरण वना रहता है।

पुरी की एक घटना है। वहाँ एक आदमी था जो भगवान् हरि का परम भक्त था तथा उनके हाथों में अपने को पूर्णतया सौंप चुका था। वह एक वार सख्त वीमार हो गया। जब रोग उसके वश में न रहा तो भगवान् स्वयं उसके सेवक वन कर कई महीनों तक उसकी परिचर्या करते रहे। प्रारब्ध का नियम अनुल्लङ्घनीय होता है। उस अचूक और अक्षुण्ण नियम की जकड़ से कोई वच नहीं सकता। भगवान् नहीं चाहते थे कि वह भक्त शिरोमणि प्रारब्धकर्म के भोग के लिए दोवारा जन्म ले। इसीलिए उस व्यक्ति को कुछ समय तक घातक वीमारी भोगनी पड़ी। कर्मक्षय का यह एक प्रकार था; परन्तु उस अनन्य भक्त की सेवा भगवान् स्वयं करते रहे। भक्तों के पूर्णतया भगवान् के अधीन हो जाने पर भगवान् अपनी ऐसी असीम करुणा के कारण स्वयं उनके दास वन जाते हैं।

शरणागति का अर्थ वनवास नहीं है और न प्रवृत्ति मात्र से विरति ही है। आजकल लोग भूल से तमोगुण या निष्क्रियता को शरणागति मान बैठे हैं। यह एक बड़ी भूल है। आवश्यकता है आन्तरिक समर्पण तथा अहङ्कार एवं कामना के समूल नाश की। तव वास्तविक प्रपत्ति है। पूर्ण शरणागति में राजसिक चित्त वाधक वनता है। हठ भी शरणागति में वाधक होता है। निम्न प्रकृति अपना प्रभुत्व दिखलाने के लिए पुनः-पुनः उद्भूत होती है। कामनाओं का पुनरावर्त्तन होता है। वासनाएँ कुछ काल के लिए शमित हो जाती हैं; किन्तु वे पुनः द्विगुणित शक्ति के साथ प्रकट होती हैं। इन कामनाओं से मनुष्य जहाँ-तहाँ भटकता रहता है। ईश्वरीय सम्भावनाओं पर विश्वास रखें और अपने-आपको पूर्णतया प्रभु के हाथों में समर्पित कर दें। उसमें पूरा विश्वास रखें। शान्त रहें तव सारे दुःख, चिन्ताएँ, पीड़ाएँ और अहङ्कार नष्ट हो जायेंगे।

प्रह्लाद की शरणागति और ईश्वर-श्रद्धा देखें। वह भगवान् हरि में सर्वथा खो गया था। ईश्वर-चिन्तन के अतिरिक्त अन्य कोई चिन्तन उसके मन में उठता ही नहीं था। प्रह्लाद को उसके पिता ने अनेक प्रकार के कष्ट दिये; फिर भी उसको प्रभु की कृपा और वर प्राप्त हुए। वह पर्वत की चोटी से गिराया गया। हाथी के पैरों से उसे कुचलवाने का प्रयत्न किया गया, विष दिया गया, पैरों को जञ्जीर से जकड़ कर समुद्र में फेंक दिया गया, विषैले नाग उस पर फेंके गये, उसकी नाक में विषैली वायु भर दी गयी, धधकती अग्नि में उसे फेंका गया, उबलता हुआ तेल उसके शिर पर उँडेला गया। फिर भी भगवान् नारायण पर उसकी श्रद्धा लेशमात्र भी डिगी नहीं। नारायण का नाम सर्वदा उसकी जिह्वा पर था। प्रत्येक भक्त में ऐसी ही श्रद्धा होनी चाहिए।

नीच स्वभाव को पूर्णतः परिवर्त्तित करने तथा पुरानी सभी दूषित प्रकृति को त्यागने पर ही शरणागति परिपूर्ण होती है। योजना और कल्पना करते हुए मत बैठे रहें। 'अब तक की भूल ही पर्याप्त है।' मन और बुद्धि को सहिष्णु रखें और ईश्वरेच्छा तथा ईश्वरीय कृपा को चरितार्थ होने दें। मौन रहें। अपने में प्रभु का अनुग्रह और प्रेम अनुभव करें तथा दिव्यानन्द का सुख पायें। शान्त रहें।

अनन्य भाव से ईश्वर से प्रार्थना करें —"हे प्रभु! मेरा मनोबल दृढ़ करें जिससे कि मैं समस्त प्रलोभनों का सामना कर सकूँ, अपनी इन्द्रियों और निम्न प्रकृति को वश में कर सकूँ, अपने बुरे स्वभाव को परिवर्त्तित कर सकूँ और अपनी शरणागति को पूर्ण और वास्तविक बना सकूँ। मेरे हृदय में आ विराजें। क्षणभर के लिए भी इस स्थान का परित्याग न करें।

मेरे शरीर, मन और अङ्गों का अपने उपकरण के रूप में उपयोग करें। मुझे इस योग्य बनायें कि मैं सदा आपमें बस सकूँ।"

कर्त्तृत्व और उत्तरदायित्व की समस्त भावनाएँ त्याग दें तथा ईश्वरेच्छा को अबाध रूप से काम करने दें। यही शरणागति का रहस्य है। आप अपनी सत्ता को परिवर्त्तित हुआ पायेंगे। यह भव्य अवस्था अक्षुण्ण है। आपके अन्दर महान् परिवर्त्तन होगा, आप ईश्वरीय ज्योति की आभा से आवृत होंगे। आप अनिर्वचनीय आनन्द, शान्ति और सुख में निमग्न होंगे। अहं समाप्त हो जाने से अब आप परिवर्त्तित आध्यात्मिक व्यक्ति बन गये हैं। आपकी व्यक्तिगत इच्छा उस विश्व-इच्छा में लीन हो गयी है। आप ईश्वरीय प्रकाश से प्रकाशमान हैं। समस्त अज्ञान गल गया है। अमर और दिव्य जीवन का सुख भोगें। जहाँ न निराशा है न भय, न भूख है न प्यास, न संशय है न भ्रम। विश्वनाथ! उस ईश्वरीय महिमा और तेज से दीप्तमान हो उठें और सर्वत्र शान्ति और सुख फैलायें।

पञ्चम प्रकरण

भक्ति-मार्ग में पाँच कण्टक

भक्ति-मार्ग में पाँच अवरोध पाये जाते हैं और वे हैं—जाति का अभिमान, ज्ञान का अभिमान, पद का अभिमान, रूप का अभिमान और यौवन का अभिमान। यदि हरिमय बनना है, तो इन पाँचों अभिमानों को दूर करना होगा।

पाँच आन्तरिक शत्रु

भक्ति में प्रगति करने में बाधा पहुँचाने वाले पाँच अन्तःशत्रु हैं। वे हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह और द्वेष। इन्हें ब्रह्मचर्य, क्षमा, वैराग्य विचार, शुद्ध प्रेम और सेवा से दूर करना होगा।

पाँच बाह्य शत्रु

भक्ति के पाँच बाहरी शत्रु हैं—सिनेमा, कुसङ्ग, अश्लील गीत, राजस् आहार और उपन्यास, जो वैषयिक और उत्तेजक विषयों से भरे होते हैं। भक्ति-मार्ग में आगे बढ़ना है तो इन पाँचों का निर्दयतापूर्वक निराकरण करना चाहिए।

षष्ठ प्रकरण

भक्ति की चार मात्राएँ

भक्ति की चार अवस्थाएँ हैं—मृदु भावना, तीव्र अनुराग, ज्वलन्त प्रेम और धधकती आसक्ति अथवा ईश्वर के प्रति कौतूहल, आकर्षण, आसक्ति और परम प्रीति।

प्रेम के चार भेद

बच्चे आदि छोटों के प्रति स्नेह; पत्नी, मित्र आदि समान स्तर के लोगों के प्रति प्रेम; गुरु, माता-पिता आदि बड़ों के प्रति श्रद्धा; तथा ईश्वर के प्रति भक्ति—ये प्रेम के चार प्रकार हैं।

मुक्ति के चार भेद

भक्त विष्णुलोक में वहाँ के निवासी के रूप में रहने लगता है, इसे सालोक्य मुक्ति कहते हैं। सामीप्य मुक्ति में राजा के साथ उसके सेवक के समान भक्त सदा ईश्वर के निकट रहता है। जिस प्रकार राजा और उसके भाई का एक ही रूप होता है, उसी प्रकार सारूप्य मुक्ति में ईश्वर और भक्त एकरूप हो जाते हैं, भक्त का रूप भगवान् जैसा हो जाता है। सायुज्य मुक्ति में भक्त भगवान् में वैसे ही विलीन हो जाता है जैसे पानी में नमक। यह भक्तियोग की परमावधि है।

भक्ति के आठ लक्षण

अश्रुपात, पुलक, कम्पन, रुदन, हँसना, पसीना छूटना, मूर्च्छा और स्वरभङ्ग—ये आठ लक्षण भक्ति के विकास में पाये जाते हैं।

सप्तम प्रकरण

ईश्वर-प्राप्ति के लिए आवश्यक बातें

ईश्वर का शीघ्रातिशीघ्र दर्शन पाने के लिए निम्नलिखित अर्हताएँ चाहिए।

(१) भक्ति निष्काम होनी चाहिए।

(२) भक्ति अव्यभिचारिणी होनी चाहिए।

(३) भक्ति तैलधारावत् अविच्छिन्न रहनी चाहिए।

(४) साधक सदाचारसम्पन्न होना चाहिए।

(५) भक्त में ईश्वर-दर्शन के लिए आत्यन्तिक निष्ठा और आस्था तथा ज्वलन्त वैराग्य और विचार होने चाहिए। आँख में किरकिरी पड़ गयी हो तो उसे निकालने वाले वैद्य की जिस तीव्रता से खोज होती है, पानी में बच्चा गिर जाता है तो किनारे पर पहुँचने की उसकी जिस प्रकार की छटपटाहट होती है, पानी से बाहर निकाली गयी मछली पानी में वापस जाने के लिए जैसे तड़पती है, घर में आग लगने पर जिस तरह आदमी दमकल की खोज में भागता है, कोई नव-वधू बारह साल तक विदेश में रहे हुए अपने पति के प्रत्यागमन की जिस तरह प्रतीक्षा करती है, उतनी तीव्रतम एकनिष्ठ भावना भक्त को भगवान् के विषय में होनी चाहिए। तभी वह ईश्वर का दर्शन पा सकेगा।

अष्टम प्रकरण

प्रार्थना की शक्ति

प्रार्थना भगवान् से मिलने के लिए मनुष्य का प्रयत्न है। प्रार्थना एक बड़ी आध्यात्मिक शक्ति है। यह उतनी ही सत्य है जितनी की पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति।

प्रार्थना मन को उठाती है। यह मन में पवित्रता भर देती है। इसमें भगवान् की स्तुति शामिल होती है। यह मन को भगवान् से मिलाये रखती है। प्रार्थना उस स्थान तक पहुँचा सकती है जहाँ कि बुद्धि भी प्रवेश नहीं कर सकती। यह आपको ईश्वर के साम्राज्य में ले जा सकती है। यह भक्त को मौत के डर से छुड़ाती है। यह आपको परमात्मा के निकट लाती है और अपने अविनाशी और आनन्दपूर्ण स्वरूप का दर्शन कराती है।

प्रार्थना की शक्ति का कथन नहीं हो सकता। इसकी महिमा अद्वितीय है। केवल सच्चे भक्त ही इसकी उपयोगिता और तेज को पहचानते हैं। प्रार्थना आदर-सहित, श्रद्धा, निष्काम्यभाव और भक्ति से तथा आर्द्र हृदय से करनी चाहिए। प्रार्थना की सामर्थ्य के विषय में तर्क न करें। आपको भ्रम हो जायगा। आध्यात्मिक बातों में तर्क नहीं चला करता। बुद्धि ससीम और दुर्बल है। इसका विश्वास मत करें। अपने अविद्या-रूपी अन्धकार को प्रार्थना के प्रकाश से हटा दें।

द्रौपदी ने सच्चे हृदय से प्रार्थना की। भगवान् कृष्ण उसका दुःख दूर करने के लिए द्वारका से दौड़ पड़े। गजेन्द्र ने सङ्कट में पड़ कर असहाय हो कर प्रभु को पुकारा। भगवान् हरि उसकी रक्षा के लिए सुदर्शन-चक्र ले कर चल पड़े। प्रार्थना के प्रभाव से प्रह्लाद के शिर पर डाला गया गरम-गरम तेल वर्फ के समान शीतल हो गया। मीरा की प्रार्थना ने कीलों की सेज को फूलों का विस्तर और काले नाग को हार में वदल दिया।

जब आप प्रार्थना करते हैं तो आप अनन्त भगवान् से अपना तार मिलाते हैं, हिरण्यगर्भ के साथ (जो शक्ति का अखण्ड भण्डार है) एक हो जाते हैं और इस प्रकार प्रभु से शक्ति, प्रकाश और बल प्राप्त करते हैं।

प्रार्थना के लिए तीव्र बुद्धि या वाक् चातुरी की आवश्यकता नहीं है। भगवान् तो प्रार्थना करते समय आपका हृदय चाहता है। विनीत, शुद्ध आत्मा से निकले हुए दो-चार ही शब्द पण्डित या विद्वान् के प्रगल्भ शब्द-प्रवाह से अधिक भगवान् को प्रिय होंगे।

जब डाक्टरों की समिति किसी रोगी को असाध्य वता देती है तो प्रार्थना उसकी सहायता करती है और वह आश्चर्यपूर्वक निरोग हो जाता है। इस प्रकार की अनेक घटनाएँ हुई हैं। आपको मालूम भी होगा। प्रार्थना के द्वारा रोग-निवारण कर देना वड़ा विस्मयजनक है।

जिसने नियमपूर्वक प्रार्थना शुरू कर दी है उसने नित्य सुख और स्थायी शान्ति के प्रदेश के लिए अपनी यात्रा आरम्भ कर दी है। जो मनुष्य प्रार्थना नहीं करता उसका जीवन व्यर्थ है।

प्रार्थना का अतुल प्रभाव है। मुझे इसका यथेष्ट अनुभव है सच्चे हृदय से निकली हुई कपट-रहित प्रार्थना तुरन्त ही भगवान् को द्रवित कर देती है।

किसी स्वार्थमय भाव की पूर्त्ति के लिए या संसारी पदार्थों की प्राप्ति के लिए प्रार्थना मत करें। भगवान् की कृपा के लिए प्रार्थना करें। दिव्य प्रकाश, पवित्रता और आध्यात्मिक मार्ग-प्रदर्शन के लिए प्रार्थना करें। निरन्तर कहें—"हे प्रभु! मैं आपको सर्वदा याद करता रहूँ। मेरा मन आपके चरण-कमलों में लगा रहे। मेरे बुरे स्वभाव को दूर कर दें।"

प्रार्थना अच्छी आध्यात्मिक वृत्तियों को वनाती है और मन को शान्ति देती है। यदि आप नियमपूर्वक प्रार्थना करेंगे तो धीरे-धीरे आपका जीवन वदल जायगा और नये साँचे में ढल जायगा। प्रार्थना स्वाभाविक होनी चाहिए। यदि प्रार्थना करना आपका स्वभाव वन जायेगा तो आपको ऐसा ज्ञात होगा कि आप प्रार्थना के विना रह नहीं सकते।

प्रार्थना पर्वतों को भी हिला सकती है। प्रार्थना बड़े आश्चर्य-पूर्ण कार्य कर सकती है। एक ही वार अपने अन्तर्हृदय से कहें —"हे भगवान्! मैं आपका हूँ। आपकी इच्छा पूरी हो। मुझपर दया करें। मैं आपका दास हूँ। क्षमा करें। मार्ग बतायें। रक्षा करें। प्रकाश दें। त्राहि माम्। प्रचोदयात्।" मन के भाव को विनयपूर्ण और ज्ञान-प्राप्ति के लिए उत्सुक रखें। अपने हृदय में भाव की वृद्धि करें। प्रार्थना तुरन्त ही सुनी जायगी और उसका उत्तर भी मिलेगा। जीवन के दैनिक सङ्घर्षों में ऐसा करें और स्वयं प्रार्थना की परम सामर्थ्य को पहचानें। आपको दृढ़ आस्तिक बुद्धि रखनी चाहिए।

भगवान् से स्वार्थपूर्त्ति के लिए प्रार्थना मत करें। यह कभी मत माँगें—"हे भगवान् ! मुझे धनी बना दें। मुझको सन्तान, पशु और सम्पत्ति दें। मेरे शत्रुओं का नाश करें। मुझे स्वर्ग में दीर्घ काल तक भोगों की प्राप्ति हो।" इस प्रकार की प्रार्थना कभी मत करें। भगवान् से दुकानदारी मत करें। इससे पहले कि आप भगवान् से कोई वस्तु माँगने का विचार करते हैं वह स्वयं आपकी आवश्यकताओं को जान लेता है। वह तो अन्तर्यामी हृदय के अन्दर निवास करने वाला है। जो सारे संसार का पालन करने वाला है वह क्या आपको भूल जायगा।

प्रातःकाल उठें और थोड़ी-सी प्रार्थना किसी भी ढङ्ग से अवश्य करें। बालक के समान सरल बन जायें। अपने हृदय को खोल दें। कुटिलता और चतुराई को त्याग दें। आपको सब-कुछ मिलेगा। सच्चे भक्तों को प्रार्थना की शक्ति भली प्रकार विदित है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने चार प्रकार के भक्त बताये हैं—आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। ये चारों ही अच्छे हैं; परन्तु इन सबमें ज्ञानी भक्त श्रेष्ठ माना गया है। उदाहरण-स्वरूप देखिए आर्त भक्त द्रौपदी ने अपने सङ्कट-निवारण के लिए भगवान् से प्रार्थना की। जिज्ञासु भक्त उद्धव ने भगवान् से ज्ञानोपदेश सुनने के लिए प्रार्थना की। अर्थार्थी भक्त ध्रुव ने राज्य-प्राप्ति की कामना से भगवान् का भजन किया। ज्ञानी भक्त प्रह्लाद ने भगवान् का सच्चा स्वरूप समझ कर बिना किसी स्वार्थ के भगवान् की भक्ति की। इन चारों की प्रार्थना का सारांश दिया जाता है।

नारद मुनि सदा प्रार्थना करते रहते हैं। नामदेव की प्रार्थना से मूर्त्ति में से विट्ठल भगवान् नैवेद्य खाने के लिए प्रकट हुए थे। एकनाथ ने प्रार्थना की, भगवान् हरि ने अपना चतुर्भुज रूप दिखाया। और, आप इससे अधिक क्या चाहते हैं? अभी इसी क्षण सच्चे हृदय से भगवान् से प्रार्थना करने लगें।

द्रौपदी की प्रार्थना

(१)

कौरव-सभा में पाण्डवों के हार जाने पर उनको अपमानित करने के लिए द्रौपदी को दुःशासन खींच लाया और जब भरी सभा में द्रौपदी का वस्त्र खींचने लगा तो द्रौपदी भगवान् श्रीकृष्ण को याद करके मन-ही-मन प्रार्थना करने लगी—"हे गोविन्द ! हे द्वारकावासी ! हे सच्चिदानन्दस्वरूप प्रेमघन ! हे गोपीजनवल्लभ ! हे सर्वशक्तिमान् प्रभो ! कौरव मुझे अपमानित कर रहे हैं, क्या यह बात आपको मालूम नहीं है ? हे नाथ ! हे रमानाथ ! हे ब्रजनाथ ! हे दुःखनाशक जनार्दन ! मैं कौरवों के समुद्र में डूब रही हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिए। हे कृष्ण ! आप सच्चिदानन्दस्वरूप महायोगी हैं। आप सर्व-स्वरूप एवं सबके जीवनदाता हैं। हे गोविन्द ! मैं कौरवों से घिर कर एक बड़े सङ्कट में पड़ गयी हूँ। मै आपकी शरण में हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिए।"

(२)

बनवास में पाण्डवों के आश्रम पर दुर्वासा ऋषि अपने दस हजार शिष्यों समेत आये। राजा युधिष्ठिर ने उनका विधि-वत् सत्कार किया और उन्हें भोजन के लिए आमन्त्रित

किया। उसे स्वीकार करके दुर्वासा जी शिष्यों के साथ स्नान करने चले गये।

द्रौपदी को अन्न के लिए बड़ी चिन्ता हुई। उसने बहुत सोचा-विचारा; किन्तु उस समय अन्न मिलने का कोई उपाय उसके ध्यान में नहीं आया। तब उसने भगवान् श्रीकृष्ण की इस प्रकार प्रार्थना की—

"हे कृष्ण! हे महाबाहु श्रीकृष्ण! हे देवकीनन्दन! हे अविनाशी वासुदेव! चरणों में पड़े हुए दुःखियों का दुःख दूर करने वाले हे जगदीश्वर! आप ही सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं। इस विश्व को बनाना और बिगाड़ना आपके ही हाथों का खेल है। प्रभो! आप अविनाशी हैं। शरणागतों की रक्षा करने वाले गोपाल! आप ही सम्पूर्ण प्रजा के रक्षक परात्पर परमेश्वर हैं। चित्त की वृत्तियों के प्रेरक आप ही हैं, मैं आपको प्रणाम करती हूँ। हे वरदाता अनन्त! आइए। जिन्हें आपके सिवाय दूसरा कोई सहारा देने वाला नहीं है उन असहाय भक्तों की सहायता करें। सबके साक्षी परमात्मन्! मैं आपकी शरण में हूँ। शरणागतवत्सल! कृपा करके मुझे बचाइए। हे श्याम-सुन्दर! आप ही सम्पूर्ण भूतों के आदि और अन्त हैं, अतः मुझ पर सारी विपत्तियाँ टूट पड़ें तो भी मुझे भय नहीं है। आज से पहले सभा में दुःशासन के हाथ से जैसे आपने मुझे बचाया था; उसी प्रकार इस सङ्कट से भी मेरा उद्धार करें।"

उद्धव की प्रार्थना

उद्धव ने कहा—"भगवान्! आप ही समस्त योग-साधनों का फल देते हैं। आप योगेश्वर हैं। आप ही समस्त योगों के आधार, उनके कारण और योगस्वरूप भी हैं। जो लोग विषयों

के चिन्तन और सेवन में घुल-मिल गये हैं उनके लिए विषय-भोगों और कामनाओं का त्याग अत्यन्त कठिन है। प्रभो! मेरी मति इतनी मूढ़ हो गयी है कि 'यह मैं हूँ, यह मेरा है,' इस भाव से मैं आपकी माया के खेल, देह और देह के सम्बन्धी स्त्री, पुत्र, धनादि में अत्यन्त आसक्त हो रहा हूँ। अतः भगवान् आपने जो उपदेश किया है उसका तत्त्व मुझे इस प्रकार समझाइए कि मैं सुगमतापूर्वक उसकी साधना कर सकूँ। प्रभो! मैं आपका सेवक हूँ। आप दूसरे के द्वारा प्रकाशित नहीं, स्वयं-प्रकाश आत्मस्वरूप हैं। प्रभो! मैं समझता हूँ कि मेरे लिए आत्मतत्त्व का उपदेश करने वाला आपके सिवाय देवताओं में भी कोई नहीं है। ब्रह्मा आदि जितने बड़े-बड़े देवता हैं वे सब शरीराभिमानी होने के कारण आपकी माया से मोहित हो रहे हैं। उनकी बुद्धि माया के वश में हो गयी है। यही कारण है कि वे इन्द्रियों से अनुभव किये जाने वाले बाह्य विषयों को सत्य मानते हैं। इसीलिए मुझे तो आप ही उपदेश कीजिए। नारायण! आप अविद्या आदि दोषों से रहित हैं। आपका स्वरूप देश, काल और वस्तुओं की सीमा से परे है। सब-कुछ आपके ज्ञान अथवा सङ्कल्प में स्थित है। मेरी बुद्धि जगत् में अत्यन्त दुःख का अनुभव करके उधर से आपकी ओर मुड़ गयी है। मैं संसारी आपत्तियों की आग में बहुत झुलस चुका हूँ। इसीलिए यह सोच कर कि मुझे आपके अतिरिक्त और कोई उपदेश नहीं कर सकता मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मुझे स्वीकार कीजिए।"

ध्रुव की प्रार्थना

ध्रुव जी बोले—"प्रभो ! आप सर्वशक्तिमान् हैं। मैं आप अन्तर्यामी को प्रणाम करता हूँ। जो लोग विषय-सुख के लिए लालायित रहते हैं और जो आपकी उपासना को भगवत्प्राप्ति के सिवा अन्य किसी उद्देश्य की पूर्त्ति में लगाते हैं उनकी बुद्धि अवश्य ही आपकी माया के द्वारा ठगी गयी है। अजन्मा परमेश्वर! मैं तो आपके इस सदसदात्मक स्थूल विश्वरूप को ही जानता हूँ। इससे परे जो आपका परम स्वरूप है उसका मुझे पता नहीं है। प्रभो ! आप जगत् के कारण, अखण्ड, अनादि, अनन्त, आनन्दमय, निर्विकार ब्रह्मस्वरूप हैं। मैं आपकी शरण में हूँ। आप परमानन्दमय हैं। जो लोग ऐसा समझ कर निष्काम भाव से आपका भजन करते हैं उनके लिए राज्यादि भोगों की अपेक्षा आपके चरणकमलों की प्राप्ति ही सच्चा फल है। यद्यपि बात ऐसी ही है तो भी आप भक्तों पर कृपा करने के लिए निरन्तर विकल रहते हैं और हम जैसे सकाम जीवों की भी कामना पूर्ण करके उनकी संसार-भय से रक्षा करते रहते हैं।"

प्रह्लाद की प्रार्थना

प्रह्लाद ने कहा—"भगवन् ! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष-बुद्धि और योग ये सभी गुण परम पुरुष भगवान् को सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं हैं। परन्तु भक्ति से तो भगवान् गजेन्द्र पर भी सन्तुष्ट हो गये थे। सर्वशक्तिमान् प्रभु अपने स्वरूप के साक्षात्कार से ही परिपूर्ण हैं। उन्हें अपने लिए क्षुद्र पुरुषों से पूजा ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। वे तो करुणावश

ही भोले भक्तों के हित के लिए उनके द्वारा की हुई पूजा को स्वीकार करते हैं। इसका लाभ भी उन भक्तों को ही होता है। जैसे अपने मुख का सौन्दर्य दर्पण में दीखने वाले प्रतिविम्व को भी सुन्दर वना देता है वैसे ही भक्त भगवान् के प्रति जो-जो सम्मान प्रकट करता है वह उसे ही प्राप्त होता है।

"भगवन् ! आपके इस परम भयावने अद्‌भुत स्वरूप को देख कर मैं तनिक भी भयभीत नहीं हुआ हूँ। दीनवन्धो ! मैं भयभीत हूँ तो केवल इस असह्य और उग्र संसार-चक्र में पिसने से। मैं अपने कर्मपाशों से वँध कर इन भयङ्कर जन्तुओं के बीच में डाल दिया गया हूँ। मेरे स्वामी ! आप प्रसन्न हो कर मुझे कव अपने चरणकमलों में बुलायेंगे।

"भगवन् ! मैं ब्रह्मलोक तक की आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य और ये इन्द्रिय-भोग जिन्हें संसार के प्राणी चाहा करते हैं नहीं चाहता; क्योंकि मैं जानता हूँ कि अत्यन्त शक्तिशाली काल का स्वरूप धर कर आपने उन्हें ग्रस रखा है। इसलिए मुझे आप अपने दासों के निकट ले चलिए। दूसरे संसारी जीवों के समान आपके अन्दर छोटे-वड़े का भेद-भाव नहीं है। फिर भी आपका कृपाप्रसाद-सेवन भजन से ही प्राप्त होता है।

"भगवन् ! अवश्य ही आपने सेवक के हृदय की वात जानने के लिए अपने भक्त को वरदान माँगने की ओर प्रेरित किया है। मैं आपका निष्काम सेवक हूँ और आप मेरे निरपेक्ष स्वामी हैं। मेरे स्वामी आप मुझे यह वर दीजिए कि मेरे हृदय में कभी किसी कामना का वीज अंकुरित ही न हो।"

नवम प्रकरण

प्रेम का स्वरूप

प्रेम सबके हृदयों को जोड़ने वाला एक दिव्य गोंद है। यह आश्चर्यपूर्ण महान् शक्तिशाली दिव्य महौषधि है। श्रद्धा, भक्ति और प्रेम-रहित जीवन सूखे खेत के समान है। वास्तव में यह मृत्यु के समान है। प्रेम दिव्य है। यह पृथ्वी पर सबसे बड़ी शक्ति है जिसका विरोध नहीं किया जा सकता। एकमात्र प्रेम ही मनुष्य के हृदय को जीत सकता है। यह शत्रु को अपने अधीन कर लेता है, वन्य पशुओं को साध लेता है। इसकी शक्ति असीम है, इसकी गहराई अथाह है, इसका स्वरूप अचिन्त्य है और इसका महत्त्व अवर्णनीय है।

हमें निःस्वार्थ सेवा, महात्माओं के साथ सत्सङ्ग, प्रार्थना, गुरु-मन्त्र के जप आदि द्वारा विश्वव्यापी प्रेम को उत्तरोत्तर विकसित करना है। आरम्भ में जब हृदय स्वार्थ-भावना से सङ्कीर्ण रहता है तो मनुष्य केवल अपनी पत्नी, बच्चों, कुछ मित्रों एवं सम्बन्धियों से ही प्रेम करता है। जब उसका उद्विकास होता है तब वह अपने मण्डल के लोगों को प्यार करने लगता है। तत्पश्चात् अपने राज्य के लोगों को प्यार करता है। बाद में अपने देशवासियों के प्रति उसका प्रेम बढ़ता है। तदुपरान्त वह विभिन्न देशों के लोगों से प्रेम करना प्रारम्भ कर देता है। अन्ततः वह सभी को प्यार करने लगता है। उसमें विश्वव्यापी प्रेम का विकास होता है। इस अवस्था में भेद की सारी दीवारें

ध्वस्त हो जाती हैं तथा हृदय की विशालता अपरिमित हो जाती है।

विश्वव्यापी प्रेम की बात करना तो सरल है, लेकिन जब आप उसे वास्तव में व्यावहारिक रूप देना चाहेंगे तो यह कठिन प्रतीत होगा। अनेक प्रकार के क्षुद्र विचार बाधक बनते हैं, पुराने अशुद्ध संस्कार जिन्हें आपने भूलवश सृजन किया है— रोड़े अटकाते हैं। लौह निश्चय, दृढ़ सङ्कल्प, धैर्य, अध्यवसाय और विचार द्वारा आप सारी बाधाओं पर बड़ी सुगमता से विजय प्राप्त कर सकते हैं। मेरे प्यारे मित्र, यदि आप सच्चे हैं तो आप पर प्रभु की दया-दृष्टि अवश्य पड़ेगी।

विश्वव्यापी प्रेम का अन्त अद्वैतिक एकत्व या अद्वैत भाव या ऋषि-मुनियों के औपनिषदिक बोध में होता है। शुद्ध प्रेम महान् समताकारी होता है। इससे समानता एवं समदृष्टि आती है। मीरा, महाप्रभु गौराङ्ग, तुकाराम, रामदास, हाफिज, कबीर आदि सभी ने इस विश्वव्यापी प्रेम का रसास्वादन किया है। इस विश्व-प्रेम के क्रोड़ में सारे विवाद और क्षुद्र काल्पनिक भेदभाव मिट जाते हैं। एकमात्र प्रेम का ही साम्राज्य रहता है।

विशुद्ध प्रेम से बढ़ कर कोई गुण नहीं है, प्रेम से बड़ा कोई धन नहीं है, प्रेम से बड़ा कोई ज्ञान नहीं है, प्रेम से बड़ा कोई धर्म नहीं है, प्रेम से बड़ा कोई मजहब नहीं है; क्योंकि प्रेम ही सत्य है, प्रेम ही ईश्वर है। इस संसार का जन्म प्रेम से हुआ, यह टिका भी प्रेम पर ही है और इसे विलीन होना है प्रेम में ही। ईश्वर प्रेम-रूप है। उसकी सृष्टि के कण-कण में उसके प्रेम का दर्शन होता है।

प्रेम में जियें। प्रेम में साँस लें। प्रेम में खायें। प्रेम में पीयें। प्रेम में चलें। प्रेम में बोलें। प्रेम में भजन करें। प्रेम में ध्यान करें। प्रेम में सोचें। प्रेम में हिलें। प्रेम में लिखें। प्रेम में चलें। प्रेम में मरें। अपने विचार, वाणी और कर्म को प्रेमाग्नि में शुद्ध करें। प्रेम के विशुद्ध जल में कूद कर, गहराई तक डुबकी लगा कर स्नान करें। प्रेम-मधु का रस चखें और प्रेम-मूर्त्ति या प्रेम-विग्रह बनें।

विश्वव्यापी प्रेम के विकास में सत्सङ्ग प्रचुर सहायक सिद्ध होता है। सन्तों की सङ्गति में ईश्वर-विषयक चर्चा होती है। हृदय और कानों को यह बहुत ही प्रिय लगती है। जगाई और मधाई तथा डाकू रत्नाकर को घोर पापमय जीवन से छुटकारा इस बात के ज्वलन्त प्रमाण हैं कि सत्सङ्गति क्या कर सकती है!

सच्चे वैष्णव बनें। अपने पद-तल के तृण से भी अधिक नम्र बनें। वृक्ष से अधिक धैर्यवान् बनें। दूसरे से सम्मान की अपेक्षा न रखें, फिर भी सबका सम्मान करें। सदैव हरि का नाम भजें और ईश्वर के प्रकट-रूप मानव की सेवा करें। इस प्रकार आप शीघ्र ही विश्वव्यापी प्रेम विकसित कर लेंगे। आपको हरि के दर्शन होंगे। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि एकमात्र यह ही आपको अमरत्व और शाश्वत शान्ति प्रदान करेगा।

दशम प्रकरण

प्रेम का सन्देश

प्रेम-मार्ग ही वास्तविक राजपथ है जो अमरत्व तथा शाश्वत आनन्द के परम धाम की ओर ले जाता है; जहाँ काल भी अपनी विनाशकारी शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता और न माया अपना मुख दिखला सकती है। यह ईश्वर-प्राप्ति के लिए निर्बाध तथा उन्मुक्त मार्ग है। प्रेम भक्त को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त कर देता है। परमगति प्रेम की दासी है। प्रेम सर्वोच्च उपलब्धि है।

भक्त में आत्मोपभोग की अपनी कोई कामना नहीं रह जाती है। उसकी एकमात्र अभीप्सा भगवान् को प्रेम के लिए प्रेम करना और उनके आनन्द के लिए उनकी सेवा करनी होती है। इस प्रकार का प्रेम विकसित होने पर भगवान् भक्त के दास बन जाते हैं।

पवित्र, निःस्वार्थ प्रीति ही प्रभु-प्रेम या भक्ति है। प्रेम एक अति-दुर्लभ वस्तु है। इसको शनैः शनैः विकसित किया जाता है। यह चिरस्थायी होता है। इसमें विलगाव, सङ्घर्ष, मुँह टेढ़ा करने या भृकुटि चढ़ाने जैसी कोई बात नहीं होती है। यह कभी क्षीण नहीं होता है। यह वर्द्धमान चन्द्रमा या वर्षाकालीन गङ्गा की भाँति सदैव बढ़ता रहता है।

मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाले समस्त अवरोधों

को पवित्र प्रेम ही मिटा सकता है। एकमात्र प्रेम ही सभी प्रकार के अनुचित द्वेषों, पक्षपात की धारणाओं, असहनशीलता और घृणा का उन्मूलन कर सकता है। सच्चा प्रेम ही यहूदी और जर्मनी, हिन्दू और मुसलमान, कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट, ब्राह्मण और अब्राह्मण, वैष्णव और शैव, सनातनी और समाजी, शाक्त और रामानन्दी, अंग्रेज और इतालवी, चीनी और जापानी, संन्यासी और वैरागी को एक मञ्च पर बैठा सकता है तथा उनके हृदयों को भी एक सूत्र में बाँध सकता है।

संसार में अच्छे से अच्छे मित्र भी परस्पर सङ्घर्ष कर बैठते हैं। यहाँ तक कि पति-पत्नी भी, जो काफी समय से एक सूत्र में बँधे चले आये हैं, परस्पर झगड़ बैठते हैं। पिता-पुत्र तक में भी कलह हो जाता है। लेकिन प्रेम के सातत्य में कभी किसी प्रकार का व्यवधान नहीं पड़ता है। प्रेम दिव्य होता है। प्रेम ही भगवान् है। भगवान् ही प्रेम है। प्रेम में लेशमात्र भी स्वार्थपरता नहीं रहती। यही कारण है कि यह चिरस्थायी होता है। प्रेम अन्तःकरण का महान् शोधक है।

प्रेम एक महती शक्ति है। जो प्राणी इसके स्वामित्वपूर्ण प्रभाव में आ जाते हैं उन पर यह निश्चय ही अद्भुत शक्ति का प्रयोग करता है। प्रेम महान् समताकारक है। प्रेमी और प्रेमिका के सारे भेदभाव समाप्त हो जाते हैं। दोनों समान स्तर पर आ जाते हैं। निर्मल, निःस्वार्थ प्रेम भगवान् को मानव और मानव को भगवान् बना सकता है। पृथ्वी पर प्रेम से बढ़ कर अन्य कोई शक्ति नहीं है। प्रेम की शक्ति के समक्ष सारे नियम ध्वस्त हो जाते हैं।

प्रेम सत्य अथवा ईश्वर के साम्राज्य या शाश्वत शान्ति

एवं आनन्द के परम धाम तक पहुँचने के लिए एक आशु मार्ग है। यह सृष्टि का जीवन-तत्त्व है। आत्म-शक्ति की यह सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। समस्त धार्मिक कार्यों का यह पूर्ण योग है। भक्त के हाथ में यह एक ऐसी जादू की छड़ी है जिसके द्वारा वह सारे संसार पर आधिपत्य प्राप्त कर लेता है। मीरा, राधा, तुकाराम, तुलसी, गौराङ्ग, ईसा और भगवत् प्रेमोन्मत्त सूफी सन्त मंसूर और शम्स तबरीज़ के पास यही प्रेरणादायी शक्ति थी।

सन्त यूहन्ना का कथन है: 'जो कोई अपने भाई से प्रेम रखता है वह ज्योति में रहता है। हम वचन और जीभ ही से नहीं, पर काम और सत्य के द्वारा भी प्रेम करें। यदि हम आपस में प्रेम रखें तो परमेश्वर हममें बना रहता है और उसका प्रेम हममें सिद्ध हो गया है। जो प्रेम में बना रहता है, वह परमेश्वर में बना रहता है और परमेश्वर उसमें बना रहता है।' इस भाँति प्रेम ईश्वर-प्राप्ति का निर्बाध तथा उन्मुक्त मार्ग है—इतना सरल तथा इतना पूर्ण कि कितने ही लोग किसी अन्य अधिक विस्तृत पथ की खोज में पड़ कर इसे प्राप्त करने में असफल ही रह जाते हैं।

प्रम परम सन्तोष-प्रदायक है। जब भक्त का भगवान् से अपरोक्ष साक्षात्कार होता है तब उसका हृदय परम आनन्द और हर्ष से आपूरित हो उठता है। उसकी सारी कामनाएँ तुष्ट हो जाती हैं। भक्त ध्रुव की वाणी सुनिए। वह कहता है: 'जिस प्रकार एक साधारण काँच की खोज में निकले व्यक्ति को एक प्रकाशमय हीरा हाथ लग जाय, उसी भाँ ; , हे प्रभो! राज-सिंहासन के लालसावश किये हुए तप से मैंने आपको प्राप्त कर

लिया है। मैं आप्तकाम हूँ। मैं अब अन्य कोई वरदान नहीं चाहता।'

जिसने ईश्वर को भुला दिया है, उसके लिए न तो इस लोक में और न परलोक में ही सच्चा सुख सुलभ है। जो व्यक्ति स्वार्थी जीवन व्यतीत करता है और अभिमान तथा अहङ्कार के वशीभूत हो अपने को अन्य व्यक्तियों से भिन्न समझता है उसको सच्ची शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। प्रभु का सतत स्मरण सारे दुःखों और शोकों का निवारण कर भक्तों को अमरत्व, परम आनन्द और शान्ति प्रदान करता है। आत्म-त्याग स्वार्थ-परता और अहङ्कार का नाश करता है। भगवान् के साथ सायुज्य प्राप्त करने के लिए केवल आत्म-त्याग ही सबसे छोटा मार्ग है।

'आहार' का अर्थ भोजन है। यह इसका शब्दार्थ है। विस्तृत भाव में इसका अर्थ है कि 'जो स्व-स्व इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जाय।' आपको अपने मन को आध्यात्मिक आहार देना चाहिए। तभी मन एकाग्र हो सकेगा, तभी वह पवित्र होगा और तभी आपको आत्म-साक्षात्कार प्राप्त हो सकेगा। आपके नेत्रों को अपने इष्टदेव के चित्र या अन्य किसी पवित्र वस्तु के दर्शन करना चाहिए; कानों को उपनिषदों, रामायण या भागवत का श्रवण करना चाहिए तथा जिह्वा को ईश्वर-विषयक बातें करनी चाहिए। ये इन्द्रियों और मन के लिए पवित्र आध्यात्मिक भोजन हैं।

यदि ईश्वर के प्रति आपकी लगन सच्ची है तो आप क्षण मात्र में ही उनसे मिल सकते हैं। उनका सदैव स्मरण करें। उनके नाम के सहारे रहें। उनकी स्तुति करें। अपने हृदय के

अन्तरतम प्रकोष्ठ में उनको ढूँढ़ें। भगवान् के प्रेम एवं सेवा का मार्ग भक्तों से सीखें। भगवान् आपकी आत्मा के आश्रय, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के एकमात्र अधिपति, आपके अन्तर्वासी तथा अन्तर्यामी हैं।

पूजा के साथ प्रेम का समन्वय करें। तभी आप सच्ची भक्ति विकसित कर सकेंगे। पूजा प्रेम को बनाये रखती है, उसे बढ़ाती, गौरव प्रदान करती और विशाल बनाती है। अपनी श्रद्धा को पूजा और प्रेम का विषय बनाने का प्रयत्न करें। अपने दैनिक जीवन में इस प्रकार के प्रेममय पूजा-धर्म का अभ्यास करें।

प्रत्येक श्वास में भगवन्नाम का उच्चारण करें। उनके चरण-कमलों में अपने विचार केन्द्रित करें। अन्तःकरण की शुचिता के लिए गोस्वामी तुलसीदास की तरह प्रार्थना करें। मीरा की भाँति आत्म-निवेदन का गीत गायें। भगवान् के प्रति पवित्र निःस्वार्थ प्रेम रखें। इसे दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक विकसित होने दें। ईश्वर से किसी प्रकार की सिद्धियाँ, भौतिक सम्पत्ति, यहाँ तक कि मोक्ष की भी याचना न करें।

यदि आप अपने इष्टदेवता की प्रतिमा को अपने अन्तःकरण में साकार रूप देने में असमर्थ हों तो स्वयं अपने द्वारा उच्चारित मन्त्र का श्रवण करने अथवा मन्त्र के अक्षरों पर क्रम से ध्यान देने का प्रयास करें। इस विधि से मन की भ्रमण-शीलता जाती रहेगी।

यह अनुभव करें कि भगवान् आपके हृदयमन्दिर में विराज-मान हैं। यदि आपकी कल्पना द्वारा रचित ईश्वर का रूप आपके

ध्यान के अनुकूल है तो आप उस रूप का ध्यान कर सकते हैं। प्रारम्भ में इस रूप की झलक कुछ धुँधली-सी हो सकती है; परन्तु निरन्तर अभ्यास द्वारा यह शनैः शनैः बिलकुल स्पष्ट एवं निश्चित आकार धारण कर लेगी। अपने ध्यान में नियमित रहें। सोचें तथा अनुभव करें कि आकार के चतुर्दिक् प्रभा-मण्डल है और आपके मन का अन्धकार इस दिव्य तेज से नष्ट हो गया है।

भगवान् के चरण-कमलों में भ्रमर की भाँति चिपक जायें। प्रेम की ओर ले जाने वाले पथ को ढूँढ़ लें। ईश्वरीय प्रेम-रूपी मधु का रसास्वादन करें।

अपनी जीवन-यात्रा के अन्तिम चरण में पहुँचने पर आपको किसी साधु या महात्मा की सङ्गति प्राप्त होगी। उसकी सङ्गति में ईश्वर के प्रति आपकी भक्ति शनैः शनैः बढ़ेगी, सांसारिक विषयों के प्रति मोह दूर होगा, प्रेरणा प्राप्त होगी तथा मन समुन्नत होगा। भगवान् के चरण-कमलों के प्रति आपका अनुराग बढ़ेगा। सन्त के सम्पर्क एवं उनके आशीर्वाद से ईश्वर के अस्तित्व में आपका विश्वास दृढ़ होगा एवं भगवद्-भक्ति में श्रद्धा सुदृढ़ होगी। महात्माओं के प्रत्यक्ष सम्पर्क बिना आपको भक्ति सुलभ नहीं हो सकती। सन्तों की कृपा के बिना आप संसार-पाश एवं बन्धनों से अपने को मुक्त नहीं कर सकते। भले ही आप तपस्या, वैदिक यज्ञ, पुण्य-कर्म, धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, सूर्य, इन्द्र और अग्नि की पूजा करते रहें पर आप भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकते। एकमात्र सत्सङ्ग द्वारा ही आप भगवान् के राज्य में सीधे प्रवेश करने का पारपत्र प्राप्त कर सकते हैं।

एकादश प्रकरण

प्रेमी का पथ

प्रेमी का मार्ग वेदान्तियों या राजयोगियों के मार्ग के समान ही कठिन होता है। मार्ग कोई भी हो, वह नितान्त सरल नहीं हुआ करता। आध्यात्मिकता के लिए कोई राजमार्ग नहीं है। सन्तजन साधकों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से ही भक्ति या प्रेम के मार्ग को अतीव सरल बताया करते हैं। वैसे प्रत्येक पथ का योग अहं के पूर्ण विनाश की ही अपेक्षा करता है। कर्मयोगी निःस्वार्थ सेवा के बल से अपने अहं को नष्ट करता है, भक्त आत्म-समर्पण अथवा शरणागति द्वारा अपने अहं का नाश करता है और वेदान्ती अपने अहं को आत्म-अप्रतिनिषेध या आत्म-निस्पृहता से नष्ट कर लेते हैं।

इस संसार में किसी अन्य व्यक्ति को प्रसन्न कर उसका प्रेम एवं स्नेह प्राप्त करना कठिन है। पति अपनी पत्नी को श्रेष्ठतम वस्तुएँ ला कर देता है, उसके लिए मूल्यवान् वस्त्र और आभूषण खरीदता है, अहोरात्र नानाविधि से उसकी सेवा में संलग्न रहता है, तथापि वह उसको पूर्ण सन्तुष्ट नहीं कर पाता है। कार्यालय में लिपिक प्रातः से सूर्यास्त तक श्रमपूर्वक काम करता है; किन्तु फिर भी अपने अधिपुरुष को प्रसन्न कर उसका प्रेम पाने में असमर्थ रहता है। साधारण-सी भूल पर उसे चौबीस घण्टे का नोटिस दे दिया जाता है। दीवान अपने महाराजा साहब को प्रसन्न करने के लिए यथासम्भव परिश्रम

करता है और उसका प्रेम प्राप्त कर लेता है; परन्तु फिर भी वह उसको पूर्ण सन्तुष्ट नहीं कर पाता है। जब लौकिक प्रेम की ऐसी बात है तो भक्त को भगवान् का प्रेम पाने के लिए क्यों न अग्नि-परीक्षा में से गुजरना पड़े, परम प्रेम के साम्राज्य में प्रविष्ट होने से पूर्व क्यों न उसे धैर्यपूर्वक कष्ट सहन करना पड़े !

यदि आप राष्ट्रपति से भेंट करना चाहें तो उनसे मिलने के लिए मात्र समय नियत कराना ही कितना कठिन है। निजी सचिव लिखता है : 'महामहिम आजकल बहुत व्यस्त हैं, पन्दरह दिन प्रतीक्षा कीजिए।' यदि आप उपायुक्त के पास जायें तो चपरासी कहेगा : 'साहब काम में व्यस्त हैं, परसों आइए।' जब लौकिक विषयों में यह स्थिति है तब त्रिलोकनाथ भगवान् कृष्ण के सन्दर्शन पाना कितना कठिन होगा !

प्रेम का मार्ग बहुत ही विषम, कण्टकाकीर्ण एवं अतिप्रपाती है। यह तलवार की धार पर चलने के समान है। यह बहुत सङ्कीर्ण भी है। इसमें एक ही प्रवेश पा सकता है।

'जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम-गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥'

जिस प्रकार एक नट पतले तार पर चलता है उसी भाँति साधक को भी पतले तार पर चलना पड़ता है। यदि वह असावधान हुआ तो किसी क्षण नीचे गहरे गर्त्त में पतित हो सकता है। उधर माया-रूपी तलवार ग्रीवा के ऊपर लटकी हुई है। नीचे गहरे सागर में मगर हैं। सम्मुख अग्नि की भयङ्कर ज्वाला है। पीछे सर्प और वृश्चिक हैं। ऐसी

स्थिति में साधक को कितना साहसी होना चाहिए ! वैसे अव्यक्त प्रभु के अदृश्य हाथ उसे सदैव सहारा दिये रहते हैं। हृदय-मन्दिर में प्रेम-रूपी निर्झर से सदैव अमृत प्रवाहित होता रहता है। भक्त इसका सेवन कर पग-पग पर भगवान् के स्नेहपूर्ण आलिङ्गन का अनुभव करता है। यही कारण है कि वह निर्भीक भाव से पथ पर अग्रसर होता है। विना ईश्वर-कृपा के वह सङ्घर्ष में विजयी नहीं हो सकता। उसकी दया और सहायता के विना वह कण्टकाकीर्ण पथ पर रञ्चमात्र आगे नहीं बढ़ सकता।

प्रेम-मार्ग में अनन्त धैर्य एवं सहनशीलता की आवश्यकता है। जिस प्रकार वाधा-दौड़ में पीपा, चक्र और सृप्र काष्ठ-फलकों आदि को लाँघता हुआ प्रथम पुरस्कार विजेता विजयी होता है उसी भाँति ईश्वर-कृपा से भक्त या प्रेमी अन्ततः अपने सङ्घर्ष में विजय-लाभ करता है। भक्त को भी शुष्क मरुस्थल और चक्रवातीय झञ्झावात से गुजरना पड़ता है। उसे अनेक उग्र फेनिल धारणाओं को लाँघना पड़ता है। उसे अनेक ऊँचे-ऊँचे सीधे पर्वत-शिखरों पर आरोहण करना होता है। उसे कठोर यातनाओं को धैर्यपूर्वक सहन करना पड़ता है। भले ही सहस्राधिक कठिनाइयाँ हों; परन्तु रुदन या नैराश्य के लिए स्थान कहाँ है ! यदि साधक में सत्यशीलता एवं लगन है, उसमें लौह सङ्कल्प एवं उग्र निश्चय है और वह अपनी पूजा और प्रार्थना में नियमित है तो समस्त कठिनाइयाँ क्षत-विक्षत मेघ की भाँति अथवा सूर्य के समक्ष कुहासे की तरह दूर हो जायेंगी।

चारों ओर से अनेक व्यक्तियों द्वारा पथराव से अपनी रक्षा करते हुए वृतिकरण में कुशल व्यक्ति कितनी निर्भीकता का

परिचय देता है ! वह पूर्ण दक्षता से प्रत्येक पत्थर के प्रहार को निष्क्रिय करता जाता है और बड़े ही अद्‌भुत ढङ्ग से अपनी रक्षा कर लेता है। उसी भाँति भक्त को प्रेम-मार्ग पर सञ्चरण करने के लिए साहसी होना चाहिए। भगवान् केवल तभी प्रकट होते हैं जब भक्त में अहं का कणमात्र भी नहीं रह जाता है, जब वह पूर्ण आत्म-समर्पण कर देता है। उसकी अनेक प्रकार से परीक्षा ली जाती है। जब द्रौपदी ने केवल भगवान् की सहायता पर ही पूर्ण विश्वास रखा और भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में अपने को पूर्णतया समर्पित कर दिया तो द्वारकानाथ तुरन्त उसके सहायतार्थ दौड़ पड़े और उसकी चीर को बढ़ा दिया।

जहाँ मीरा के प्रेमी कृष्ण पूर्ण वैभव एवं श्री से युक्त हो राज्य करते हैं, उस परम प्रेम के राज्य के द्वार में प्रविष्ट होने से पूर्व उसे अनेक अग्नि-परीक्षाओं में से हो कर गुजरना पड़ा था, सभी प्रकार की यातनाओं को सहन करना पड़ा था। राजस्थान की जलती वालुका पर उसे नग्न पाँव चलना पड़ा तथा भिक्षा पर जीवन-यापन करना पड़ा। उसे भूमि पर सोना पड़ा। कई बार उसे भूखों रहना पड़ा। प्रभु की कृपा से उसने इन कष्टों को कभी कष्ट नहीं समझा और सदैव ही आनन्दोन्मत्त रही।

भगवान् की कृपा से भक्त प्रह्लाद के लिए अग्नि हिम में रूपान्तरित हो गयी। उसके लिए उबलता हुआ तेल चन्दन की भाँति शीतल हो गया। गिरधर गोपाल की कृपा से मीरा के लिए नागराज पुष्पमाल के रूप में, विष अमृत में और तीक्ष्ण काँटों की शय्या गुलाबों की सेज में बदल गयी। माधव की कृपा से 'मूक होइ बाचाल, पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।'

प्रेम की भाषा आँसुओं की भाषा

ईश्वरीय प्रेम क्या है ? यह सांसारिक विचारों से युक्त व्यक्तियों का दूसरों से कुछ-न-कुछ वस्तु प्राप्त करने की आशा से किया जाने वाला स्वार्थपूर्ण प्रेम नहीं है। यह किसी युवती के सौन्दर्यपूर्ण मुख या तीक्ष्ण कटाक्ष या उसके सुन्दर वस्त्रों को निहारने वाला प्रेम नहीं है। यह कुछ एक अस्थायी भावों का क्षणिक उद्रेक भी नहीं है। प्रेम की भाषा अश्रुओं की भाषा है। समुचित शब्दों में इसका वर्णन करना कठिन है। भाग्यशाली भक्त अपने अन्दर इस मधुर प्रेम का अनुभव करता रहता है। पिपासु भक्त के हृदय में दिव्य प्रेम की ज्वाला अहर्निश जला करती है। उसे अपने अन्न-जल तक की चिन्ता नहीं रहती। वह क्षीणकाय हो जाता है। प्रभु के वियोग में वह तड़पता रहता है। उसे रात्रि में निद्रा नहीं आती। उसे ज्ञात ही नहीं कि उसका प्रेमी उसे कब दर्शन दे जायगा; अतः वह रातभर जागरण करता है। जब भक्त अपने अहं को पूर्णतः नष्ट कर देता है, जब वह अपनी गुप्त इच्छा की तृप्ति की आकांक्षा न रख पूर्णतया आत्म-समर्पण कर देता है, जब वह अपने प्रेमी से मिलने के लिए जल-रहित मछली की तरह आकुल और तृषित रहता है, जब वह भगवान् के वियोग का गहन दुःख अनुभव करता है, जब विरहाग्नि उसे बुरी तरह झुलसाती है तब भगवान् भक्त के सामने प्रकट होते हैं और तभी वह उसके आँसू पोंछते, अपने हाथों से भोजन कराते और उसे अपने कन्धों पर चढ़ाते हैं।

पूर्ण निःशेष आत्म-समर्पण करने में कोई हानि नहीं है और न यह कोई बुरा सौदा ही है। देखा जाय तो इसमें परम

लाभ है। आपको अपना तन, मन, आत्मा और सम्पत्ति सब उनके अर्पण करने होंगे। तब भगवान् स्वयं को ही आपके लिए अर्पित कर देंगे। भगवान् की समस्त सम्पत्ति आपकी हो जायेगी। भगवान् स्वयं आपके बन जायेंगे। आपने उनके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित कर उन्हें खरीद लिया है। अब वे आपके दास हैं। जिस प्रकार चीनी जल में घुल कर जल के साथ एक बन जाती है उसी प्रकार आप भी प्रभु के साथ सायुज्य प्राप्त कर लेंगे। वे तो केवल आपका पूर्णतः पवित्र प्रेम-प्रभृत निःशेष हृदय ही चाहते हैं। भक्त कहता है, 'मैं तेरा हूँ और तू मेरा है।' लेशमात्र स्वार्थपरता होने पर आप उन्हें नहीं प्राप्त कर सकते।

जिस प्रेमी ने परम प्रेम को विकसित कर लिया है वह रीतियों, औपचारिकताओं और सिद्धान्तों का दास नहीं होता; न ही वह सामाजिक नियमों से बँधता है। वह कोई बाह्य प्रदर्शन नहीं करता। वह घण्टियाँ नहीं बजाता है। वह लोगों के आक्षेप की भी चिन्ता नहीं करता। उसकी स्थिति अवर्णनीय है। वह अपने प्रेम की अपने प्रेमी पर वृष्टि करता है। प्रेम यदृच्छ होता है। प्रेम अमित वेग से अविच्छिन्न धारा में प्रवाहित होता है। उसमें कोई व्यवधान नहीं। कभी-कभी वह अपने प्रेमी के वियोग की तीव्र वेदना अनुभव करता है तो उसको ऐसा प्रतीत होता है मानो भट्ठी के ऊपर गर्म तवे पर भुन रहा है। तुरन्त दिव्य सुधा टपकने लगती है। तब उसको ऐसा अनुभव होता है मानो गङ्गा के शीतल जल में डुबकी लगा ली हो।

प्रेमी अपने प्रेमपात्र से एक पल के लिए भी विलग होना सहन नहीं कर सकता। वियोग का प्रत्येक क्षण उसके लिए

मृत्यु-पीड़ा के तुल्य होता है। एक पल उसको एक वर्ष जैसा लगता है। वियोगावस्था में वह उसके संयोग के लिए तृषित एवं व्याकुल रहता है। उसकी आँखें सूनी-सूनी हो जाती हैं, उसका मुख भावशून्य हो जाता है और उसके हृदय में ज्वाला भड़क उठती है। वह अपना अन्न, जल और निद्रा त्याग देता है। वह अशान्त रहता है। उसके प्रेमाश्रु अविरल रूप से वहते रहते हैं। अश्रुओं में उसे सान्त्वना मिलती है। उसकी पिपासा कुछ क्षीण हो जाती है। वह प्रेम की कोमल और सुन्दर लता को अपने अश्रुओं से परिपुष्ट करता है। अपने प्रेमी के अतिरिक्त उसके मन में कोई अन्य विचार नहीं रहता है। उसके मन मे प्रेम का निर्झर सदैव निर्झरित होता रहता है। वह कभी सूखता नहीं है। उस निर्झर से प्रेम एक सतत वेगपूर्ण धारा से अन्दर प्रवाहित होता है। यह परम प्रेम की चिर-स्थायी धारा है, इसके प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता है।

प्रेम का मार्ग निस्सन्देह कठिनाइयों से आकीर्ण है; परन्तु जो भक्त अपने सङ्कल्प में दृढ़ और साधना एवं वैराग्य में उग्र है, जो भगवान् को स्वयं को एवं अपने सर्वस्व को अर्पित करने वाला है तथा जो उस प्रभु को सदैव स्मरण करता रहता है। वह समस्त कठिनाइयों को बड़ी सरलता से पार कर जाता है। प्रत्येक स्थिति में पग-पग पर उसे भगवत्कृपा प्राप्त होती रहती है। वह सदैव ईश्वर में निवास करता है।

भक्त कहता है, तवैव अहं', वेदान्ती कहता है, 'स एव अहं'। जो भक्त यह कहता है 'मैं तेरा हूँ' वह अन्ततः 'मैं ही ब्रह्म हूँ', के सूत्र की सार्थकता अनुभव करता है। जब वह पराभक्ति विकसित करता है तो 'दासोऽहम्' की स्थिति 'सोऽहम्'

में पर्यवसित हो जाती है। प्रेम का फल ज्ञान है। प्रेम का आरम्भ दो से होता है और अन्त एक में होता है।

हे प्यारे राम ! क्या आप ऐसा हृदय नहीं विकसित करेंगे जिसमें भगवन्नाम-स्मरणमात्र से आनन्दाश्रुओं की झड़ी लग जाय ? अपने हृदय में निरन्तर प्रेम तरङ्गें उठने दें। ईश्वरीय आलिङ्गन की उष्णता अनुभव करें। दिव्य प्रेम के गहन प्रकाश का सेवन करें। शाश्वत प्रेम के आनन्द का आस्वादन करें। दिव्य प्रेम की सुधा का पान कर सदैव सुखी रहें।

द्वादश प्रकरण

श्रद्धा की महिमा

श्रद्धा पर्वतों तक को हिला सकती है, वड़े-वड़ आश्चर्यपूर्ण काम कर सकती है। यह आपको भगवान् के आन्तरिक स्थल में ले जा सकती है। यह आपको दिव्य बना सकती है। इसी से आपको शान्ति, आत्मवल, आनन्द, मोक्ष, और अमृतत्व प्राप्त हो सकता है। इसलिए भगवान् में, शास्त्रों में, गुरुवाक्यों में और अपनी आत्मा में सच्ची और सजीव श्रद्धा रखें।

श्रद्धा एक अमूल्य, दुर्लभ पुष्प है। इसे अपने हृदय की फुलवाड़ी में उगाना चाहिए। इसे प्रतिदिन निष्कपटता के जल से सींचना चाहिए। संशय और अविश्वास-रूपी घासपात को एकदम हटा देना चाहिए। इस प्रकार इसकी जड़ें गहरी जम जायेंगी। इसमें भक्तिरूपी फूल और फल लगेंगे। श्रद्धा को सन्तों और भक्तों के सत्सङ्ग, प्रार्थना, आत्मशोधन, स्वाध्याय और ध्यान के द्वारा पुष्ट किया जा सकता है। आप आध्यात्मिक सीढ़ी के डण्डों पर केवल तीव्र अविचल श्रद्धा की सहायता से ही चढ़ सकते हैं। जब कभी संशय आपको दवाने लगे तो उसे कठोरता से त्याग दें। दिव्य प्रकाश के सामने अपना हृदय खोल दें; क्योंकि सारा ज्ञान और प्रकाश उसी से प्राप्त होता है। वालक के समान सरल बन जायें। अपने हृदय के अन्तस्तल से प्रार्थना करें। आध्यात्मिकता की दीपशिखा और भी उज्ज्वल हो जायगी।

भगवान् में श्रद्धा रखें और शास्त्रों को ठीक प्रकार से समझें। यदि अशुद्ध हृदय के अज्ञानी मनुष्य गीता, रामायण या भागवत पढ़ेंगे तो वे हमेशा दोष-दृष्टि के द्वारा उसमें भूलें ही ढूंढ़ते रहेंगे। ऐसे मनुष्यों को पवित्र शास्त्रों के पढ़ने से लाभ नहीं होता। उनके मन तो छलनी के समान होते हैं। वे सार पदार्थ को ग्रहण नहीं करते और अर्थ का अनर्थ करते हैं ऐसे लोग कुछ साधना नहीं करते, न उन्हें वैराग्य ही होता है। वे तो व्यर्थ की गप्पों में समय खोते हैं। सच्चा साधक ऐसी बातों में कभी नहीं पड़ेगा। जीवन के प्रत्येक क्षण को भगवान् की उपासना और सेवा में भली प्रकार लगाना चाहिए। आपको कुछ-न-कुछ क्रियात्मक साधना करके इसी जन्म में मोहरूपी समुद्र को पार कर लेना चाहिए।

त्रयोदश प्रकरण

सङ्कीर्त्तन-विज्ञान

भगवान् रहस्यमय हैं। मन भी रहस्यमय है। जगत् भी एक पहेली है। सङ्कीर्त्तन किस प्रकार मानवी प्रकृति को दैवी प्रकृति में बदल देता है, किस प्रकार पुराने कुसंस्कारों को बदल डालता है, किस प्रकार मानसिक द्रव्य को बदलता है, आसुरी स्वभाव को किस प्रकार शुद्ध स्वभाव में परिणत कर देता है और कैसे यह भक्त को भगवान् का साक्षात्कार करा देता है यह भी एक रहस्य है। विज्ञान और तर्क सङ्कीर्त्तन की क्रियाविधि को नहीं समझा सकते। तर्क अपूर्ण है। न्यून बुद्धि वाला मनुष्य अधिक बुद्धि वाले मनुष्य से हार जाता है। तर्क जीवन की बहुत-सी समस्याओं को नहीं सुलझा सकता। दैवी प्रेरणा तर्क से भी ऊपर की वस्तु है; परन्तु यह तर्क का विरोध नहीं करती।

प्रत्येक शब्द में महान् शक्ति होती है। गरम पकौड़ी का नाम लेते ही मुँह में पानी भर जाता है। विष्ठा का नाम लेते ही उबकाई आती है। जब साधारण शब्दों की यह बात है तो परमात्मा के पवित्र नामों का तो कहना ही क्या है! भगवान् का प्रत्येक नाम अनेक दिव्य शक्तियों और अमृत से पूर्ण है।

एक विपक्षी कहता है: "यदि मैं मिश्री, मिश्री पुकारूँ तो क्या मुझे मिश्री मिल जायगी। केवल राम-राम पुकारने ही से मुझे भगवान् का दर्शन कैसे हो सकता है?" मिश्री तो बाहर की वस्तु है; परन्तु भगवान् आपके हृदय के वासी हैं। वह

आपके निकट ही हैं। राम-राम कहने से मन एकाग्र हो जाता है। यह निस्तब्धता में लीन हो जाता है और हृदय में आपको भगवान् का दर्शन हो जाता है। भगवान् का नाम भगवान् के समान ही कल्याणकारी है। भगवान् चैतन्य हैं और इसी प्रकार भगवान् का नाम भी चैतन्य है। दूसरे पदार्थों या नामों में यह वात नहीं है।

कोई मनुष्य गहरी नींद में सोया हुआ है। उसके अन्दर प्राण भी है। यदि आप उसे प्राण-प्राण कह कर पुकारें तो भी वह नहीं सुनेगा। जरा उसका नाम 'राम', 'श्याम' ले कर पुकारें तो वह सुन लेगा और निद्रा से जाग उठेगा। नाम की ऐसी शक्ति है। साकार चैतन्य ही नाम है।

सव पदार्थों से पृथ्वी वड़ी है। यह पृथ्वी आदिशेष के फण पर टिकी हुई है; इसलिए आदिशेष पृथ्वी से वड़े हैं। पन्नग-भूषण भगवान् शिव के हाथ पर आदिशेष लिपटे रहते हैं; इसलिए शङ्कर भगवान् आदिशेष से वड़े हैं। भगवान् शङ्कर श्रीराम का ध्यान करते हैं; इसलिए श्रीराम भगवान् शङ्कर से वड़े हैं। राम का नाम आजतक भी याद किया जाता है; इसलिए राम का नाम सगुण राम से भी वड़ा है। काम और दुर्वासनाओं से पूर्ण मन को शुद्ध करने में भगवन्नाम-कीर्त्तन का वड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। यह अचिन्त्य लाभ पहुँचाता है। इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

भगवान् की प्रथम विभूति आकाश है। आकाश का गुण शब्द है। शब्द झङ्कार उत्पन्न करता है। झङ्कार एक आकार-विशेष उत्पन्न करता है और शब्दों के समूह तरह-तरह के अनन्त आकार वनाया करते हैं। आधुनिक विज्ञान की एक

पुस्तक में एक प्रयोग-विशेष के वर्णन में लिखा है कि पृथ्वी पर वालू बिछा कर एक वाद्य-यन्त्र जब बजाया गया तब बालू पर ज्यामिति के कई विचित्र आकार बन गये। इस प्रयोग से यह सिद्ध हो गया कि विशेष स्वरों के निकलने से ज्यामिति के विशेष-विशेष आकार बन जाते हैं। हिन्दुओं की गान-विद्या में स्पष्ट लिखा है कि भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों के भिन्न-भिन्न रूप हैं जिनका वर्णन विस्तार से किया गया है। उदाहरण के लिए मेघ-राग को एक बड़ भव्य पुरुष के रूप में हाथी पर बैठा कर दिखलाया गया है। इसी तरह वसन्तराग फूलों से सजे एक सुन्दर युवक के रूप में दिखाया गया है। इन सबका सार यह है कि एक राग-विशेष जब ठीक अपने समय पर स्वर-सहित और साज के साथ गाया जाता है तो उस राग के स्वरों की झङ्कार उस राग-विशेष का रूप सामने खड़ा कर देती है। 'Voice Figures' (वायस फिगर्स) नाम की पुस्तक की लेखिका Mrs. Watts Huges (श्रीमती वाट्स ह्यूजेस) ने अपने कई प्रयोगों द्वारा हमारी उक्ति को प्रमाणित कर दिया है जिनका वर्णन उक्त पुस्तक में है। अभी हाल में ही इन्होंने लार्ड लेटन की (Lord Leighton's) प्रयोगशाला में चुने हुए लोगों की सभा में व्याख्यान देते हुए अपने उन सुन्दर वैज्ञानिक प्रयोगों को प्रत्यक्ष दिखलाया जो कई वर्षों की कठिन मेहनत से सफल हो पाये थे। श्रीमती ह्यजेस के पास ईडोफोन (Eidophone) नामक एक सादा वाद्य-यन्त्र है, जो एक नली, एक रिसीवर और एक लचकदार रेशे से बना है। इस यन्त्र को धूल या रेत जैसी किसी चीज पर रख कर बजाने से शकलें बन जाती हैं। व्याख्यान देने के आरम्भ में बाजे के लचकदार वस्त्र पर इन्होंने छोटे-छोटे बीज बराबर करके रख दिये। इसके

वाद ईडोफोन के वजते ही स्वर की झङ्कार से प्रेरित हो कर वीजों का समूह ज्यामिति के ग्राकार में परिणत हो गया। इसके वाद इन्होंने तरह-तरह की धूल ग्रौर चूरे पर ग्रपना प्रयोग दिखलाया। कापोडियम (Capodium) का चूरा इस प्रयोग में विशेष सफल सिद्ध हुग्रा। उस सभा के एक सवाददाता ने वतलाया है कि श्रीमती जी के वाजा वजाते ही धूल पर ज्यामिति के ग्राकार, नक्षत्र, सर्प ग्रादि तरह-तरह के ग्राकार वन गये। ग्रारम्भ में इसी तरह के ग्राकार धूल पर भी वनते रहे। एक वार जव इन्होंने एक विशेष स्वर निकाला तो डेज़ी (Daisy) नामक विलायती फूल का ग्राकार वन कर ग्रदृश्य हो गया। यह ग्रनजान में वन गया था। ग्रन्त में वहुत माथापच्ची ग्रौर ग्रभ्यास के वाद उन विशेष स्वरों को पहचाना गया जिनसे डेज़ी फूल प्रकट हुग्रा था। ग्रन्त में श्रीमती जी ने विचित्र स्वर निकाल कर एक-एक पंखुड़ी को प्रकट करके पूरा डेज़ी फूल प्रकट किया। श्रीमती जी के प्रयोगों को देख कर सारा दर्शक-मण्डल ग्रवाक् था ग्रौर धूल पर जैसे-जैसे नवीनतम तथा सुन्दर ग्राकार प्रकट हो रहे थे दर्शकगण श्रीमती जी की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। फूलों के वाद समुद्री जीव-जन्तु ग्राये जिनके तरह-तरह के रङ्ग थे ग्रौर जिनके वड़े विस्तृत ग्राकार थे। इसके वाद वृक्ष दिखायी दिये जो फलों से लदे थे। फल जमीन पर गिर रहे थे। उस दृश्य में पेड़, पेड़ों के पीछे चट्टानें ग्रौर चट्टानों के पीछे समुद्र था। कुछ लोगों ने चिल्ला कर कहा—"ग्ररे! ये तो जापानी दृश्यावली से मिलते-जुलते ग्राकार के हैं।"

श्रीमती फिनलेंग ने एक वार फ्रांस में जव कुमारी मेरी को 'O Eve Marium' वाली प्रसिद्ध स्तुति गा कर सुनायी थी तव

ईसामसीह को गोद में लिये मेरी प्रकट हो गयी थीं। इसी तरह एक बार वाराणसी के एक बङ्गाली विद्यार्थी ने, जब वह फ्रांस में पढ़ रहा था, भैरव-राग गाया था तो उसके गाते ही कुत्ते के सहित भैरव जी प्रकट हो गये थे। इसी प्रकार बार-बार भगवान् का नाम गाने से धीरे-धीरे इष्टदेवता का स्वरूप बन जाता है और यह भगवान् के लाभकारी प्रभाव के ध्यान का केन्द्र हो जाता है और यह प्रभाव इसी केन्द्र से निकल कर उपासक या कीर्त्तनकार में व्याप्त हो जाता है।

जब मनुष्य ध्यानावस्था में प्रवेश करता है तो आन्तरिक वृति-प्रवाह बहुत प्रबल हो जाता है। जितना अधिक गम्भीर ध्यान होता जाता है उतना ही अधिक इसका प्रभाव प्रतीत होने लगता है। मन की एकाग्रता इस शक्ति का प्रवाह ऊपर की ओर मस्तिष्क या कपाल के द्वारा भेजती है और इसका प्रत्युत्तर मधुर आकर्षण की अमृतमयी वर्षा में मिलता है। इससे उत्पन्न होने वाले भाव सारे शरीर में कान्ति व्याप्त करते हैं और मनुष्य को ऐसा प्रतीत होता है मानो वह मधुर विद्युत्-शक्ति में स्नान कर रहा हो।

उपर्युक्त प्रयोगों से निम्नलिखित बातें प्रकट होती हैं—

(१) शब्दों से आकार बनते हैं।

(२) विशेष-विशेष स्वरों से विशेष-विशेष मूर्त्तियाँ प्रकट होती हैं।

(३) किसी विशिष्ट आकार को प्रकट करने के लिए किसी विशेष स्वर को एक विशेष आलाप में गायें।

(४) इस उद्देश्य के लिए उन्हीं शब्दों को किसी दूसरे स्वर या आलाप में कहने से काम नहीं चलेगा। जैसे 'अग्निमीले पुरोहितं' मन्त्र में 'वह्निमीले पुरोहितं' कहने से तो भले ही काम चल जाय: परन्तु 'ईले अग्निं पुरोहितं' कहने से यथेष्ट फल-प्राप्ति नहीं होगी। ऐसा कर देने से मन्त्र की सामर्थ्य जाती रहती है। आप मन्त्रों के शब्दों का स्थान नहीं बदल सकते; क्योंकि फिर वह मन्त्र ही नहीं रहेगा। स्वर या वर्ण से विकृत मन्त्र के उच्चारण से अनिष्ट फल की सम्भावना हो जाती है; परन्तु भगवन्नाम में यह बात नहीं है। ये नाम किसी भी प्रकार गाये जा सकते हैं।

"उलटा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥"

सारा संसार जानता है कि ऋषि वाल्मीकि, जो पहले रत्नाकर नाम के डाकू थे, रामनाम को उलटा 'मरा-मरा' जपते-जपते ब्रह्मस्वरूप हो गये।

"राम-नाम जपते रहो रीझ भजो या खीज।
उलटा-पुलटा ऊपजे जस धरती को बीज॥"

चाहे प्रेम से कहें अथवा क्रोध से, भगवन्नाम का तो प्रभाव होगा ही; जैसे बीज उलटा या सीधा जैसे भी पृथ्वी में डाला जाय वह उगता ही है।

सङ्कीर्त्तन का स्वरूप

सङ्कीर्त्तन भगवान् का स्वरूप है। ध्वनि सङ्कीर्त्तन है। सङ्कीर्त्तन वेदों का सार है। चारों वेद शब्द से उत्पन्न होते हैं।

चार प्रकार के शब्द हैं—वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और परा। शब्द का उद्‌गम नाभि से होता है: वेद भी नाभि से उत्पन्न हुए हैं। सङ्कीर्त्तन और वेद एक ही स्थान से निकले हैं।

लोग इकट्ठे बैठ कर भगवान् के नामों को एक स्वर और एक लय से शुद्ध भाव से गाते हैं; यही संकीर्त्तन है। संकीर्त्तन बाजे के साथ होता है; क्योंकि 'कीर्त्तन' के पूर्व 'सम्' उपसर्ग है। संकीर्त्तन यथार्थ विज्ञान है। यह शीघ्र ही मन को उन्नत करता है और भाव को उच्चतम अवस्था तक बढ़ा देता है।

नाम और नामी अभिन्न हैं। नाम नामी से बड़ा है। व्यवहार में भी मनुष्य के मर जाने के बाद भी उसका नाम बहुत समय तक बना रहता है। कालिदास, शेक्सपीयर, वाल्मीकि तथा तुलसीदास की याद आज तक होती है। नाम चैतन्य ही है। भाव और प्रेम-सहित भगवन्नाम-गायन को संकीर्त्तन कहते हैं।

संकीर्त्तन करते समय ताल, स्वर और लय का पूर्णतः ऐक्य होना आवश्यक है तभी आनन्द और मन की उन्नति होगी। संकीर्त्तन-सभाओं और मण्डलों के सारे सदस्यों को अपनी शीघ्र उन्नति के लिए कुछ नियमों का पालन अवश्य करना चाहिए। किसी मन्त्र की दो माला जपनी चाहिए, एकादशी का व्रत रखना चाहिए, प्रतिदिन दो घण्टे मौन रखना चाहिए, सात्त्विक और थोड़ा भोजन करना चाहिए, स्त्री-सहवास कम करना चाहिए और गीता के एक अध्याय का प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिए। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में चार बजे शय्या त्याग कर जप और ध्यान करना चाहिए। अपनी आमदनी का दशम भाग दान में लगाना चाहिए। माँस और मादक (नशीली) वस्तुओं का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। सत्य बोलना चाहिए।

दूसरों के भाव को चोट नहीं पहुँचानी चाहिए। किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिए। इससे शीघ्र ही चित्त-शुद्धि हो जायगी। विवाह और अन्य संस्कारों के अवसर पर अपने-अपने घरों में संकीर्त्तन कराना चाहिए। लाहोर, मेरठ, मथुरा, हरदोई तथा अन्य स्थानों में ऐसा ही होता है। ऐसे अवसरों पर गन्दे और अश्लील गाने की प्रचलित प्रथा को बिलकुल बन्द कर देना चाहिए।

सङ्कीर्त्तन के लाभ

जो संकीर्त्तन करता है वह संसार और शरीर को भूल जाता है। संकीर्त्तन देहाध्यास को दूर करता है। यह परमात्म-ज्ञान देता है। तुकाराम एक किसान थे। वे अपने हस्ताक्षर तक करना नहीं जानते थे। वे हर समय भगवान् श्रीकृष्ण के नाम 'विट्ठल-विट्ठल' का गायन करते थे। उनको भगवान् कृष्ण का स्थूल रूप से दर्शन हुआ था। संकीर्त्तन से उनका ज्ञान-चक्षु खुल गया था। उनकी बोधकारी अभङ्ग (कविताएँ) बम्बई विश्वविद्यालय में एम० ए० के विद्यार्थियों के पाठ्य-विषय हैं। उन निरक्षर तुकाराम को इतना ज्ञान कहाँ से आया? संकीर्त्तन के द्वारा वे समस्त विद्याओं के आगार भगवान् श्रीकृष्ण तक पहुँच गये। वे भाव-समाधि के द्वारा, जो संकीर्त्तन से हो गयी थी, उस दिव्य स्रोत में पहुँच गये। क्या इससे परमात्मा की सत्ता सिद्ध नहीं होती और क्या यह प्रमाणित नहीं होता कि भगवान् ज्ञान-स्वरूप हैं और संकीर्त्तन इस ज्ञान को प्राप्त करने में बड़ा प्रभाव रखता है।

इस कलियुग में संकीर्त्तन से भगवान् का दर्शन और ज्ञान प्राप्त होता है। संकीर्त्तन से अनुराग बढ़ता है। संकीर्त्तन

ईश्वर-प्राप्ति का अति-सुगम, सुरक्षित और शीघ्रतर सुमार्ग है। जो आरम्भ में मनोरञ्जन के लिए भी संकीर्त्तन करेंगे उन्हें भी कुछ समय बाद संकीर्त्तन का पावन प्रभाव विदित हो जायगा और फिर वे स्वयं ही भाव और श्रद्धा से संकीर्त्तन करने लगेंगे। भगवान् के नाम में अद्भुत शक्ति है। मनुष्य केवल रोटी के सहारे तो नहीं रह सकता; परन्तु केवल भगवान् के नाम के सहारे रह सकता है।

भगवन्नाम-गायन से उत्पन्न हुई मधुर झङ्कार अपने मन को सुगमता से वश में कर लेने में भक्तों की सहायक होती है। इससे उनके मन पर हितकारी प्रभाव पड़ता है। वह उनके मन को पुराने मार्गों से निकाल कर दिव्य तेज और महिमा के ऊँचे शिखर पर चढा देती है। यदि कोई आन्तरिक हृदय से पूर्ण भाव और प्रेम-सहित कीर्त्तन करे तो पशु, पक्षी और वृक्षों पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। उनसे प्रत्युत्तर मिलता है। संकीर्त्तन का इतना प्रबल प्रभाव है। जिस स्थान पर कीर्त्तन हुआ करता है वहाँ ऋषि और सिद्ध पुरुष आते हैं। आप मण्डप के चारों ओर तेजोमय प्रकाश-पुञ्ज देख सकते हैं। कीर्त्तन से ऐसा लाभकारी फल कैसे निकलता है और किस प्रकार यह भक्त को भगवान् के सम्मुख ले आता है, हम अब यही बात समझायेंगे।

नाद-उपासना के द्वारा आध्यात्मिक सोपान की भिन्न-भिन्न सीढ़ियों पर चढ़ कर जीवात्मा परमात्मा से मिल सकता है। नाद स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार के होते हैं। स्थूल नाद से सूक्ष्म नाद तक पहुँचा जाता है। यदि जीवात्मा परब्रह्म से मिलना चाहता है तो प्राण का जीव की अग्नि से संयोग करना

अनिवार्य है। 'रा' वीज मूलाधार की अग्नि का द्योतक है। ब्रह्मरन्ध्र या मूर्द्धा में प्राण रहता है जिसका द्योतक 'म' वीज है। 'रा' और 'म' का संयोग तारक-बीज है जिसके द्वारा जीवात्मा अभय और अमृतत्व के उस पार पहुँच जाता है और स्थायी आनन्द और परम सुख प्राप्त करता है। सूक्ष्म नाद और अन्त में दिव्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए संकीर्त्तन सुगम उपाय है।

पञ्च महाभूतों की सूक्ष्म तन्मात्राओं से अन्तःकरण बना है। वायु-तन्मात्रा से मन, जल-तन्मात्रा स चित्त और पृथ्वी-तन्मात्रा से अहंकार तथा अग्नि-तन्मात्रा से बुद्धि बनी है। कोई तत्त्व जितना सूक्ष्म होता है उतना ही अधिक शक्तिमान् होता है। पृथ्वी से अधिक शक्तिमान् जल है; क्योंकि यह पृथ्वी से सूक्ष्मतर है। जल से अधिक शक्तिमान् अग्नि है; क्योंकि यह जल से सूक्ष्मतर है। अग्नि से अधिक शक्तिमान् वायु है; क्योंकि यह अग्नि से सूक्ष्मतर है। वायु से अधिक शक्तिमान् आकाश है; क्योंकि यह वायु से सूक्ष्मतर है। वायु आकाश में रहता है। आकाश वायु का आधार है। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न होती है। प्रलय होने पर पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में और वायु आकाश में लीन हो ज़ाती है।

मन पाँचों विषयों को भोगता है। मनुष्य को परमात्मा से पृथक् रखने वाला यह मन ही है। पञ्च-तन्मात्राएँ, जिनसे अन्तःकरण-रूपी सूक्ष्म शरीर वना है, आत्मा-रूपी रत्न को लूटने वाले डाकू हैं। आकाश इन सवका नायक है। यदि नायक को वश में कर लेंगे तो शेष चारों डाकू भी आपके वश

में आ जायेंगे। आकाश का निग्रह कर लेने से शेष चारों तन्मात्राओं का निग्रह हो जायेगा। तन्मात्राओं का निग्रह कर लेने से मन का निग्रह अतीव सुगम हो जाता है। आकाश का गुण शब्द है। यदि मधुर वाणी से ताल और स्वर मिला कर भगवन्नाम गा सकते हैं तो आप आकाशतत्त्व को, अन्य तन्मात्राओं को और मन को वश में कर सकते हैं। इसलिए संकीर्त्तन मन के निग्रह में और ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने में साधक की सहायता करता है। नाम-कीर्त्तन से भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

मधुर राग स्नायु-मण्डल को शान्ति देता है। अमरीका में बहुत से डाक्टर 'गायन और वाद्य' के द्वारा रोग-चिकित्सा करते हैं। शेक्सपीयर ने एक स्थल पर लिखा है कि जिस मनुष्य में मधुर राग के लिए अभिरुचि नहीं है वह विद्रोह, विप्लव और षड्यन्त्रों के योग्य है। उसकी आत्मा गतिशून्य है और उसका प्रेम अन्धकारमय है। ऐसे किसी भी मनुष्य का विश्वास नहीं करना चाहिए।

निरन्तर संकीर्त्तन के द्वारा मन पवित्र होता है। इससे सद्भावनाएँ भरती हैं। नित्य का संकीर्त्तन सत्संस्कारों को पुष्ट करता है। जो मनुष्य अपने विचार अच्छे और पवित्र बनाने की साधना करता है उसके मन को इसी तरह की आदत पड़ जाती है। जब मनुष्य संकीर्त्तन में भगवान् की मूर्त्ति का चिन्तन करता है तो मानस-द्रव्य भगवान् की मूर्त्ति में परिणत हो जाता है। वस्तु का संस्कार मन में रह जाता है। बार-बार क्रिया को दोहराने से संस्कार प्रबल हो जाता है और मन की वैसी ही प्रवृत्ति हो जाती है। जिसके मन में दिव्य भाव रहते हैं वह स्वयं भी निरन्तर विचार-शक्ति से दिव्यत्व में बदल जाता

है। उसका भाव, व्यवहार और स्वभाव, शुद्ध हो जाता है, ध्याता और ध्येय, उपासक और देव, चिन्तक और चिन्त्य अभिन्न और एक हो जाते हैं। यही समाधि है और संकीर्त्तन या उपासना का यही फल है।

मेरे प्यारे मित्रो ! प्रतिदिन संकीर्त्तन करें। संकीर्त्तन-भक्ति का दूर-दूर तक प्रचार करें। संकीर्त्तन के द्वारा विश्वप्रेम को बढ़ायें। सब स्थानों में संकीर्त्तन-मण्डलियों की स्थापना करें। पृथ्वी पर ही घर-घर में संकीर्त्तन करके वैकुण्ठ वना दें। अपने सच्चिदानन्द-स्वरूप को प्राप्त करें।

कीर्त्तनकारों को एक चेतावनी

आजकल की संकीर्त्तन-मण्डलियों ने म्यूज़िक क्लबों का रूप ले लिया है। इनके सदस्य केवल मनोरञ्जन के लिए संकीर्त्तन करते हैं। उनमें न तो आन्तरिक दिव्य भाव होता है और न शुद्ध प्रेम, न उनमें नाम के प्रति रुचि पायी जाती है और न भगवन्नाम की शक्ति में सच्ची श्रद्धा।

जब संकीर्त्तन में हारमोनियम और तबला नहीं होता तो संकीर्त्तन के सदस्य तुरन्त ही उठ कर चले जाते हैं। उपस्थिति वहुत थोड़ी रह जाती है। वहुत लोगों ने कान के स्वाद और मनोरञ्जन के लिए संकीर्त्तन शुरू कर दिया है; इसलिए संकीर्त्तन-आन्दोलन में वास्तविक उन्नति नहीं होती है। संकीर्त्तन-मण्डल वरसाती मेढकों के समान वनते और विगड़ते रहते हैं। संकीर्त्तनकारों को विना बाजे के कीर्त्तन करना चाहिए। जब तवला और हारमोनियम नहीं होता तव लोगों को संकीर्त्तन करना कठिन मालूम पड़ता है। यह बड़ी भारी त्रुटि है। जब

बिना बाजे के संकीर्त्तन किया जाता है तो एक प्रकार का अकथनीय आनन्द प्राप्त होता है। जिन उन्नतिशील साधकों का चित्त शुद्ध हो गया है वे बाजा-तबला साथ ले कर कीर्त्तन कर सकते हैं; क्योंकि उनके लिए ये सहायक हैं। यदि चित्त-शुद्धि नहीं है तो बाजे का साथ मनुष्य को अज्ञान और अन्धकार के गहरे गड्ढे में धकेल देगा और मन में तमोगुण और काम भर देगा।

संकीर्त्तन ब्राह्ममुहूर्त्त में प्रातः ४ बजे से ६ बजे तक करने से बड़ा लाभ मिलता है। बिना किसी प्रयत्न के ही भाव का प्रादुर्भाव हो जायगा। जब रात को बाजे के साथ कीर्त्तन किया जायगा तो इससे कुछ असंयतात्मा, कच्चे, आसुरीभावयुक्त पुरुषों में काम का उद्दीपन हो जाना सम्भव है; क्योंकि उनमें बुद्धि-विकास होते हुए भी पाशविक वृत्तियों की बहुलता है। जब मनुष्य का मन पाशविक वृत्तियों से भर जाता है तो बड़े से बड़ा विद्वान् पण्डित और शास्त्रज्ञ भी काम का शिकार हुए बिना नहीं रहता।

लोग पहले एक-दो साल तो बड़े अद्भुत उत्साह से कीर्त्तन करते हैं; परन्तु फिर उनकी उतनी रुचि नहीं रहती। वे निश्चेष्ट और सुस्त हो जाते हैं। यह अभीष्ट नहीं है। जीवन-पर्यन्त उतना ही उत्साह बनाये रखना चाहिए। जैसे अन्न-जल एक दिन के लिए भी नहीं छोड़े जा सकते इसी प्रकार संकीर्त्तन भी कभी नहीं बन्द करना चाहिए। संकीर्त्तन केवल आध्यात्मिक आहार नहीं है वरन् यह भौतिक और मानसिक शक्तिदायक रसायन भी है। आप संकीर्त्तन के सहारे जीवित रह सकते हैं।

आज आपको भली प्रकार विदित है कि संकीर्त्तन-आन्दोलन बड़ी तीव्र गति से बढ़ रहा है। भारतवर्ष के कई भागों में संकीर्त्तन-मण्डल स्थापित हो गये हैं और बहुत से अँग्रेजी पढ़े लोग, नास्तिक, संशयवादी और निर्धारित सिद्धान्तवादी भी हाथों में करताल और मजीरे लिये हुए जोर-शोर से कीर्त्तन कर रहे हैं। आज बुलन्दशहर, बाँदा, ग्वालियर, रुड़की, सहारनपुर, जालन्धर, जम्मू और दूसरे शहरों में संकीर्त्तन-सम्मेलन हो रहे हैं। थोड़े ही समय में किसी महान् अवतार की सम्भावना की जाती है जिसके लिए यह भूमिका तैयार हो रही है।

बड़े खेद की बात है कि आजकल भक्तों ने सखी-भाव को बिलकुल गलत समझ लिया है। उन्होंने उस स्थूल शरीर को ही सखी समझ रखा है। वे अपनी वेश-भूषा स्त्रियों की भाँति रखते हैं और विचित्र व्यवहार करते हैं। यह बड़ी भारी खेद-जनक भूल है। जीवात्मा सच्ची सखी है। सखी-भाव तो नितान्त आन्तरिक अवस्था है। यह केवल बाहरी दिखावा नहीं है। आत्म-निवेदन के द्वारा जीवात्मा का परमात्मा के साथ मिलन होता है; प्रेमी और प्रेमास्पद एक हो जाते हैं। यह भक्ति की पराकाष्ठा है। भक्ति का आरम्भ दो से होता है और अन्त एक में होता है। सखीभाव के तत्त्व को बहुत लोग नहीं समझ पाये हैं; इसीलिए संकीर्त्तन-संस्थाओं में दूषण हो गये हैं। संकीर्त्तन-संस्थाओं के सभापतियों को इस प्रकार के कलङ्क को, जो भक्ति-रूपी वृक्ष को खाये जा रहा है और सखी-भाव के सार को नष्ट कर रहा है, दूर कर देना चाहिए। जब आप भगवन्नाम-संकीर्त्तन करें तो ऐसा भाव रखें कि भगवान् आपके हृदय में विराजमान हैं और उनके प्रत्येक नाम में दिव्य शक्ति भरी हुई है और उससे सारे पुराने दूषित संस्कार और दुर्वास-

नाएँ दग्ध हो रही हैं, मन में पवित्रता भर रही है, रजोगुण और तमोगुण का सर्वथा नाश हो रहा है और अज्ञान का आवरण छिन्न-भिन्न हो रहा है। भगवान् की मूर्त्ति और उनके गुणों का ध्यान करें तभी आप संकीर्त्तन से अधिकतम लाभ उठा सकेंगे।

कीर्त्तन का कलङ्क

बहुत से जटा और दाढ़ी बढ़ाये हुए संन्यासी वेशधारी, बहुत से अपक्व योगी, कपटी योगी, मिथ्योपदेशक, दम्भी तपस्वी और मिथ्या अवतार कीर्त्तन-मञ्च पर आते हैं और अनेक प्रकार से लोगों को ठगते हैं। एक प्रचारक कहता है, "मेरी चेलियो! पुरुषों और स्त्रियों में कुछ अन्तर नहीं है। सबकुछ ब्रह्म, राम या कृष्ण है। मैं कृष्ण हूँ। तुम सब गोपियाँ हो। आओ हम सब रासलीला करें।" इसी प्रकार वह सारे वातावरण को दूषित कर देता है। एक कच्चा वेदान्ती कहता है, "असी ब्रह्म, तुसी ब्रह्म। हमें ब्रह्मानन्द का रस लेना चाहिए।" वे शरीर को ही आत्मा मानते हैं। वे जड़ वेदान्ती हैं। कहीं गन्दा शरीर भी शुद्ध आत्मा हो सकता है? प्यारे मित्रो! इन कपटी योगियों और पाखण्डी वेदान्तियों से सावधान रहें। ये शैतान के सन्देशवाहक हैं जो उसी प्रकार प्रचार करते हैं जैसे सनातन धर्म के सच्चे प्रचारक हों। वे अपनी उदरपूर्त्ति ने लिए साधुओं, योगियों, संन्यासियों का वेश बनाये फिरते हैं। 'उदर निमित्तं बहुकृतवेशाः' और कुछ नहीं। ऐसी बातों का बलपूर्वक अन्वेषण करना चाहिए और इनको निर्दयता से निकाल देना चाहिए। इसलिए नियमबद्ध आध्यात्मिक संस्थाओं की आज अत्यन्त आवश्यकता है।

सङ्कीर्त्तन-क्षेत्र में भी भ्रष्टता आ गयी है। इस कलङ्क को दूर करना चाहिए और सङ्कीर्त्तनाचार्यों और उपदेशकों को संकीर्त्तन-क्षेत्र की सुचारु रूप से रक्षा करनी चाहिए। अब उत्तर प्रदेश, विहार और पञ्जाव में सङ्कीर्त्तन की गति वढ़ रही है और यह सन्तोष की वात है कि मुहल्लों में और घर-घर में जोर से संकीर्त्तन हो रहा है।

वहुत से मिथ्या संकीर्त्तनकारों ने जीविका कमाने के लिए इस क्षेत्र में पदार्पण किया है और इसे अपना पेशा बना लिया है। आजकल वहुत से मिथ्या भाव-समाधि वाले प्रकट हो पड़े हैं। वे रङ्गमञ्च पर खुल्लमखुल्ला भाव-समाधि का आडम्वर रचते हैं और कहते हैं कि उन्हें भगवान् कृष्ण ने दर्शन दिये। वे लोगों को यह कह कर ठगते हैं कि वे उन्हें भगवान् का दर्शन करा देंगे। यह सव निरा धोखा है। इनसे जनता को भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। वाजार के छोकरों को लीला करनी सिखायी जाती है और रङ्गमञ्च पर ला कर उनसे रासलीला करायी जाती है इससे दर्शकों के चित्त पर बुरा प्रभाव पड़ता है। भगवान् की लीला एकान्त स्थान में कतिपय चुने हुए भक्तों के वीच में संयम-शील महात्माओं या उच्च आत्माओं द्वारा होनी चाहिए। जनता के सामने रङ्गमञ्च पर नहीं होनी चाहिए। संसारी लोग लीला-कीर्त्तन वहुत पसन्द करते हैं और लीला देख-देख कर 'वाह-वाह' करते हैं। ये कैसे अज्ञानी हैं। शैतान के सन्देशवाहकों द्वारा ये लोग कैसे आसानी से ठगे जाते हैं।

भगवान् कृष्ण का दर्शन इतना सस्ता नहीं है। मीरा और अवतार पाँच सौ वर्षों में एक ही वार आते हैं। महात्माओं का

सत्सङ्ग करें। धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करें, जप करें, ध्यान करें। 'मैं कौन हूँ' यह विचार करें। सात्त्विक सद्गुणों की वृद्धि करें। यम-नियम का पालन करें। तव आप शैतान और उसके चेलों से बचेंगे। वे आपसे डरते रहेंगे और अपने-आप भाग जायेंगे।

कीर्त्तन के नियमपूर्वक अभ्यास और भगवान् के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण के द्वारा आप पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके दिव्य भगवदानन्द-सागर में मग्न रहें—यही हमारी प्रार्थना है।

अखण्ड-कीर्त्तन

अखण्ड का मतलव है लगातार या विना टूटे हुए। कीर्त्तन का अर्थ है भगवन्नाम-गायन। अखण्ड-कीर्त्तन का अर्थ है लगातार भगवन्नाम गाते रहना। अखण्ड-कीर्त्तन वड़ा प्रभावशाली आध्यात्मिक साधन है। इस काल में सारी कुवृत्तियाँ निकल जाती हैं। अखण्ड-कीर्त्तन के द्वारा मन का संयम वड़ी आसानी से हो जाता है। इससे विषयों की ओर दौड़ने की मन की आदत को रोका जा सकता है। अखण्ड-कीर्त्तन के अभ्यास से मन को विषय-चिन्तन का अवसर और समय नहीं मिलता। मन को पकड़ने का अखण्ड-कीर्त्तन सवल और सुगम साधन है। मन में सत्त्वगुण भर जाता है। अखण्ड-कीर्त्तन में परम आनन्द और शान्ति होती है।

अखण्ड-कीर्त्तन से शीघ्र समाधि प्राप्त होती है। यह जल्दी ही हृदय को पवित्र कर देता है। यह चित्त-शुद्धि और बड़े अचिन्त्य लाभ देता है। तीन दिन के उत्सव से चित्त पर स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता। समाधि दिलाने और चित्त में शीघ्र

ही दिव्य परमानन्द भरने के लिए अखण्ड-कीर्त्तन से अधिक वलशाली और कोई साधन नहीं है। झाँसी तथा उत्तर प्रदेश के अन्य नगरों में दो-तीन महीने, छः महीने और पूरे एक वर्ष के भी अखण्ड-कीर्त्तन हुए हैं।

अखण्ड-कीर्त्तन से वड़ा कोई यज्ञ नहीं है। कलियुग में भली प्रकार किया हुआ अखण्ड-कीर्त्तन एक सौ अश्वमेध यज्ञों के समान होता है। यदि दोनों के फल को तराजू में तौला जाय तो अखण्ड-कीर्त्तन वाला पलड़ा भारी हो जायगा। यह कलियुग के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। इसमें कुछ लागत नहीं लगती। अखण्ड-कीर्त्तन में निम्न राम-धुन का उच्चारण होना चाहिए :

"हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥"

द्वापर-युग के अन्त में नारद मुनि ब्रह्मा जी के पास गये और उनसे कलियुग में संसार-सागर को पार करने का सवसे सुगम उपाय पूछा। ब्रह्मा जी ने उत्तर दिया कि सोलह नामों के इस महामन्त्र के जप से मनुष्य आसानी से भवसागर के पार हो सकता है। यह सोलह नाम सोलह कलाओं से घिरे हुए जीव के आवरण को दूर करते हैं जिसके द्वारा जीव का पृथक् व्यक्तित्व वना हुआ है। तव जिस प्रकार वादलों के हट जाने से सूर्य-मण्डल प्रकाश करता है वैसे ही परब्रह्म का प्रकाश हो जाता है। महामन्त्र के उच्चारण में किसी विधि या नियम की आवश्यकता नहीं है। ब्रह्मा जी ने कहा—"जो कोई भी पवित्र हो कर या अपवित्र रह कर भी सदा इस महामन्त्र का उच्चारण करता है उसे सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य

मुक्ति मिलती है। वह तत्काल ही सारे वन्धनों से छूट जाता है।

साधारण संकीर्त्तन में भगवान् के किन्हीं भी नामों का गायन किया जा सकता है। भगवान् शङ्कर के उत्सवों में तथा शिव-रात्रि को 'ॐ नमः शिवाय' का अखण्ड-कीर्त्तन किया जा सकता है।

छुट्टियों में ग्रामों, नगरों और मुहल्लों में अखण्ड-कीर्त्तन करना चाहिए। सुविधा के अनुसार वारह घण्टे, चौवीस घण्टे, एक सप्ताह तथा इससे भी अधिक काल के लिए अखण्ड-कीर्त्तन किया जा सकता है। इसको प्रातःकाल ४ वजे या सायंकाल छः वजे आरम्भ करना चाहिए। प्रातःकाल का समय अच्छा रहता है। जितने अधिक समय के लिए किया जाय उतना ही अच्छा उसका फल होता है।

आप २४ घण्टे का अखण्ड-कीर्त्तन चार, छः या आठ आद-मियों में भी कर सकते हैं। इसमें टोलियाँ वदलने की आवश्य-कता नहीं है। सव साथ बैठ कर वरावर गा सकते हैं। कुछ लोग नेता विना अखण्ड-कीर्त्तन करना पसन्द करते हैं। सव लोग साथ-साथ मिल कर गाते हैं; परन्तु इसमें वे जल्दी थक जायेंगे। यदि पहले एक वोले और फिर सव वोलें तो इसमें नेता को और दूसरे आदमियों को भी आराम मिल जाता है। यह विधि श्रेष्ठ है।

बीस या अधिक मनुष्यों की टोलियाँ अखण्ड-कीर्त्तन कर सकती हैं। दो-दो घण्टे पीछे टोली वदली जा सकती है। कीर्त्तन बन्द नहीं होना चाहिए। सारे अखण्ड-कीर्त्तन में एक ही लय

रहनी चाहिए। मधुर सुरीली लय में महामन्त्र गाना चाहिए। बिना सधाये हुए लोग कीर्त्तन को खण्डित कर देंगे। विशेष रूप से जो लोग नेता का कार्य करना चाहते हैं उनमें बहुत अच्छी साधना होनी चाहिए। यदि बीच-बीच में बन्द हो जाय तो फिर वह अखण्ड-कीर्त्तन नहीं रहता। कीर्त्तन को लगातार जारी रखने में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। नेता को सचेत रहना चाहिए। उसे तुरन्त ही अपनी बारी लेनी चाहिए। इसमें पूर्ण अनुशासन बरतना चाहिए।

एक मनुष्य मधुर सुरीली लय में कीर्त्तन प्रारम्भ करे और अन्य सब उसके पीछे बोलें। सोलह नामों का महामन्त्र है। व्यक्तिगत जप या कीर्त्तन के लिए पूरा मन्त्र एक ही साथ बोलना चाहिए; परन्तु अखण्ड-कीर्त्तन में अधिक थकावट और रुकने से बचने के लिए आधा-आधा मन्त्र दोहराना ठीक होगा अर्थात् पहले नेता 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे' कहे और फिर इसी को अन्य लोग बोलें। तदुपरान्त नेता 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे' कहे, अन्य लोग इसे दोहरायें। परन्तु मन्त्र का एक ही आधा भाग बार-बार नहीं कहते रहना चाहिए; कीर्त्तन के उच्चारण में रुकना नहीं चाहिए। बहुत से लोग आधा मन्त्र भी एक साथ नहीं बोल सकते। कीर्त्तन के नेताओं को इसका ख्याल रखना चाहिए। नहीं तो कीर्त्तन अखण्ड नहीं रहता। इसी प्रकार कीर्त्तन का तारतम्य बना रह सकता है।

कीर्त्तन के नेता को एक-एक घण्टे बाद बदलते रहना चाहिए। इस प्रकार नेता का समय कम-से-कम आधा और अधिक-से-अधिक एक घण्टा रहना चाहिए। रात को दस बजे से हर एक नेता के लिए आधा-आधा घण्टा समय रखना चाहिए;

क्योंकि फिर उसे नींद सताने लगती है। पहले से नेताओं का समय विभाग करके सबको सूचना दे देनी चाहिए। नेता को खड़े हो कर गाना चाहिए। खड़े होने से वह नींद को काबू में कर सकता। जिन्हें नींद सताने लगे उनको भी खड़े हो कर कीर्त्तन करना चाहिए।

अखण्ड-कीर्त्तन में ऊँचे स्वर से नहीं गाना चाहिए, इससे आप जल्दी थक जायेंगे। बहुत नीचे स्वर में गायेंगे तो लोगों की अभिरुचि जाती रहेगी। आपको मध्यम स्वर में गाना चाहिए।

कीर्त्तन के समय में भगवान् की मूर्त्ति की अपने हृदय में स्थापना करें, उसी में मन लगा दें। आँखें बन्द कर लें। कीर्त्तन-स्थान में भगवान् के चित्र के सामने अखण्ड-दीप जलाना चाहिए। एक मनुष्य को इस दीपक की देख-भाल करते रहनी चाहिए।

संकीर्त्तन के नेताओं को एक ही लय में गाना चाहिए। लय बदलने से कीर्त्तन खण्डित हो जायगा और रस की एकता नहीं रहेगी। सारे सदस्यों को स्वर-सहित एक ही लय में महा-मन्त्र गाने की साधना भली प्रकार करनी चाहिए।

सदस्यों का निरीक्षण करने के लिए दो सदस्य होने चाहिए। रात के पिछले पहर सदस्यों को नींद दबा लेती है; अतः इन निरीक्षकों को उन्हें जगाते रहना चाहिए और रातभर जगाये रखना चाहिए। जागने में कठिनाई प्रतीत होगी। बहुत से दो बजे रात को सोने लगेंगे। अखण्ड-कीर्त्तन करने वालों को चाय नहीं पीनी चाहिए। रात को १२ बजे एक कटोरा गर्म दूध पी

सकते हैं। अखण्ड-कीर्त्तन के आरम्भ में और समाप्ति पर सारे सदस्यों को मौजूद रहना चाहिए।

अखण्ड-कीर्त्तन में शामिल होने वालों को ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए तथा सात्त्विक भोजन करना चाहिए। जिह्वा का संयम करने से सारी इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। कीर्त्तनकारों को फल, दूध, आलू इत्यादि खाने चाहिए। यदि चार दिन तक वे चीनी और नमक खाना छोड़ दें तो उनके लिए अच्छा तप होगा। विना चीनी का दूध पीयें और विना नमक के आलू खायें। ये सब जिह्वा के संयम में सहायक हैं। जो इस साधना को नहीं कर सकते वे साधारण भोजन खा सकते हैं।

अखण्ड-कीर्त्तन करने वालों को अपने हाथ से धो कर कपड़े पहनने चाहिए। कीर्त्तन-स्थान में नङ्गे पैर जाना चाहिए। कीर्त्तन समाप्त होने के वाद तुरन्त ही नहीं सो जाना चाहिए।

जहाँ सम्मेलन होते हैं वहाँ अखण्ड-कीर्त्तन के लिए अलग मण्डप होना चाहिए। अखण्ड-कीर्त्तन के स्थान में महामन्त्र के लाल कपड़े के वोर्ड टाँगने चाहिए। स्त्रियाँ भी पृथक् रूप से अपने निश्चित समय पर अखण्ड-कीर्त्तन में भाग ले सकती हैं।

अखण्ड-कीर्त्तन समाप्त होने पर प्रातःकाल महामन्त्र, गायत्री-मन्त्र और गीता-पाठ-सहित हवन करना चाहिए। जौ, तिल, चावल, खोपरा, किशमिश, छुहारे और घी मिला कर चरु वनायें। थोड़ा-थोड़ा सवको वाँट देना चाहिए। मन्त्रोच्चार के साथ स्वाहा कह कर आहुति अग्नि में डालनी चाहिए। महा-मन्त्र-कीर्त्तन का दशमांश हवन होना चाहिए। यदि कीर्त्तन में महामन्त्र की सौ माला हुई हों तो दश माला का हवन होना चाहिए और वाद में—

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।"

इस शान्ति-मन्त्र के सहित पूर्णाहुति के लिए एक साबुत गोला ले कर उसमें घी भर के लाल कपड़े से लपेट कर घी में डुवा-कर उसे इस मन्त्र के साथ अग्नि में डालना चाहिए। हवन की भस्म को एक डिब्बे में भर लेना चाहिए और थोड़ी-थोड़ी सबको बाँटनी चाहिए। श्रद्धा और भाव-सहित इस भस्म को माथे पर लगाने से वहुत से असाध्य रोग अच्छे हो जाते हैं। फिर आरती और प्रसाद के सहित इस यज्ञ की समाप्ति करनी चाहिए। यज्ञ समाप्त होने पर साधु-महात्माओं, संन्यासियों, और दरिद्रनारायण को भोजन कराना चाहिए।

वह स्थान धन्य है जहाँ अखण्ड-कीर्त्तन होते हैं। जो लोग ऐसे धर्म-यज्ञ का आयोजन करते हैं वे भी परम धन्य हैं और जो इसमें भाग ले कर भगवन्नाम-रूपी अमृत का पान करते हैं वे तो वहुत ही धन्य हैं। ऐसे सच्चे और सद्भावी भक्तों की जय हो !

चतुर्दश प्रकरण

भक्ति का फल

भक्ति से हृदय कोमल बनता है और ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, अहङ्कार, गर्व और शठता दूर होती है। उससे सुख, सन्तोष, पवित्रता, आनन्द, शान्ति और ज्ञान की वृद्धि होती है; सर्व प्रकार की चिन्ताएँ, परेशानियाँ उत्तेजनाएँ, भय, मानसिक उद्वेग और दुःख पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं तथा भक्त जन्म-मृत्यु के संसार-चक्र से मुक्त हो जाता है। वह शाश्वत शान्ति, आनन्द और ज्ञान की अमर गति पाता है। ईश्वर का प्रेम उतना ही मधुर है जितना कि अमृत, जिसके पान करने से अमरता प्राप्त होती है। जो व्यक्ति परमेश्वर में जीता हैं, चलता-फिरता और उसी में रमण करता है, वह अमर हो जाता है।

भगवद्गीता में मोक्ष या अमृतत्त्व का स्वरूप सुचारु रूप से वर्णन किया गया है—

"अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥"

(गीता : ८-२१)

—जो वह अव्यक्त अक्षर ऐसा कहा गया है, उस ही अक्षर नामक अव्यक्तभाव को परमगति कहते हैं तथा जिस सनातन अव्यक्तभाव को प्राप्त हो कर मनुष्य पीछे नहीं आते हैं, वह मेरा परमधाम है।

"तत्प्रसाद त्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।"

(गीता : १८-६२)

—उस परमात्मा की कृपा से तू परम शान्ति और सनातन परमपद को प्राप्त होगा ।

"जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ।"

(गीता : २-५१)

—जन्म-रूप बन्धन से छूटे हुए, निर्दोष परमपद को प्राप्त होते हैं ।

परमधाम, आनन्दमयपद, शाश्वतपद, परमगति ये सब पर्यायवाची शब्द हैं ।

भक्त के लक्षण

भक्त सबके विषय में समदर्शी होता है । किसी के प्रति वह शत्रुता नहीं रखता । वह आदर्श जीवन जीता है । उसे किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा स्थान में आसक्ति नहीं होती । उसमें 'ममभाव' (तेरा-मेरा का भाव) नहीं होता । सुख-दुःख में, शीत-उष्ण में निन्दा-स्तुति में उसके चित्त का सन्तुलन डिगता नहीं । उसके लिए धन पत्थर के टुकड़े के समान है । क्रोध या कामवासना से वह दूर होता है । सभी स्त्रियों को वह अपनी सगी बहन या माता समझता है । उसके होठों पर सदा हरि-नाम रहता है । उसकी वृत्ति हमेशा अन्तर्मुख होती है । वह शान्ति और सुख से परिपूर्ण होता है ।

"वे भक्त धन्य हैं जो हरिस्मरण से कभी रोते हैं, कभी हँसते

हैं, कभी उल्लसित होते हैं, कभी परले पार की रहस्यात्मक बातें बोलते हैं, कभी दिव्य भावना में नाच उठते हैं जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, कभी हरि के गुण और यश का गान करते हैं, कभी हरि की क्रियाओं का अनुकरण करने लगते हैं और कभी मौन बैठ कर उत्कृष्ट आत्मानन्द का अनुभव करते हैं।"

(श्रीमद्भागवत)

पञ्चदश प्रकरण

ध्यान की विधि

अपना चित्त भगवान् के चरणारविन्दों में लगायें । फिर चित्त को क्रमशः पीताम्बर, हृदयदेशस्थित श्रीवत्स और कौस्तुभमणि, केयूर, कुण्डल, मस्तकस्थ मुकुट को और फिर चारों भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म को देखें और अन्त में चरणों की ओर चित्त ले जायें । यही क्रम वार-वार दोहरायें । उनके गुणों का भी चिन्तन करें । इस प्रकार आप राम, कृष्ण अथवा शिव का ध्यान कर सकते हैं ।

उद्धव ने कहा—"कमलनयन प्रभो! आप कृपा कर यह वतलाइए कि भक्तजन आपका किस रूप से—साकार अथवा निराकार, सगुण अथवा निर्गुण ध्यान करें ? वह ध्यान क्या है ? उस ध्यान का स्वभाव, उसका स्वरूप तथा उसकी विधि वतलाइए ।"

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—"जो न तो वहुत ऊँचा हो और न वहुत नीचा ही हो ऐसे आसन पर शरीर को सीधा रखकर आराम से बैठ जायें, हाथों को अपनी गोद में रख लें और दृष्टि अपनी नासिका के अग्रभाग पर जमायें । इसके वाद एक नासिका से पूरक तथा दूसरी नासिका से रेचक प्राणायाम के द्वारा नाड़ियों का शोधन करें । धीरे-धीरे इनको उलटी रीति से करने का तथा इन्द्रियों को वश में करने का अभ्यास करें । श्वास-प्रश्वास के साथ ॐ का मानसिक जप करें ।

"इस प्रकार प्रतिदिन वे तीन बार प्राणायाम करें। इससे एक महीने में ही प्राण वश में हो जायगा। फिर यह भावना करें कि शरीर के भीतर हृदय में अष्टदल कमल है। उसकी कणिका पर सूर्य, चन्द्र और अग्नि का, एक के अन्दर दूसरे का चिन्तन करें। तदनन्तर अग्नि के अन्दर मेरे इस रूप का स्मरण करना चाहिए। मेरा यह स्वरूप ध्यान के लिए बड़ा ही मङ्गल-मय है। मेरा रूप—सुडौल, सुन्दर चार लम्बी भुजाएँ, बड़ी ही सुन्दर और मनोहर ग्रीवा, सुस्निग्ध कपोल तथा अनुपम मुस्कान से युक्त है। दोनों ओर के कानों में मकराकृत कुण्डल झिलमिला रहे हैं। मेघ के समान श्यामल शरीर, पीताम्बर वस्त्र, श्रीवत्स तथा लक्ष्मी जी का चिह्न वक्षःस्थल पर दायें-बायें विराजमान हैं। हाथों में क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। गले में वनमाला, चरणों में नूपुर तथा छाती पर कौस्तुभमणि दमक रही है। अपने-अपने स्थान पर चमकते हुए किरीट, कङ्गन, करधनी और बाजूबन्द शोभायमान हो रहे हैं। सुन्दर मुख और प्यारभरी चितवन कृपा-प्रसाद की वर्षा कर रही है।

'मेरे इस सुकुमार रूप का ध्यान करना चाहिए और अपने मन को एक-एक अङ्ग में लगाना चाहिए। जब सारे अङ्गों का ध्यान होने लगे तब अपने चित्त को खींच कर एक स्थान में स्थिर करें। अन्य अङ्गों का चिन्तन न कर मेरे मुस्कानयुक्त मुख का ही ध्यान करें। जब चित्त वहाँ स्थिर हो जाय तो उसे वहाँ से हटा कर आकाश में स्थिर करें। तदनन्तर उसका भी त्याग कर मेरे निर्विशेष शुद्ध स्वरूप में निवास करें। त्रिपुटी—ध्याता, ध्येय और ध्यान को विलीन हो जाने दें। जिसे पूर्ण तन्मयता प्राप्त हो गयी है, वह मुझमें अपने को और अपने में मुझे देखता है जैसे कि एक ज्योति दूसरी ज्योति में मिल कर एक हो जाती

है। जो प्राणी इस ध्यान-योग द्वारा मुझ पर अपने चित्त का संयम करता है उसके चित्त से वस्तु की अनेकता, उसके सम्बन्ध का ज्ञान और कर्मों का भ्रम पूर्णतया निवृत्त हो जाता है और वह समाधि प्राप्त करता है।"

मानस-पूजा

मूर्त्ति की मानसिक पूजा गन्ध-पुष्पादि-सहित पूजा से श्रेष्ठतर है, लेकिन नये साधकों को स्थूल पूजा से ही प्रारम्भ करना चाहिए। भक्ति-मार्ग में अग्रसर होने पर वे मानस-पूजा का आश्रय ले सकते हैं।

"आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं,
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः।
सञ्चारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम्॥"

श्री शङ्कराचार्यकृत यह मानस-पूजा ईश्वर की मानस-पूजा की एक उत्कृष्ट प्रक्रिया है। इस श्लोक को कण्ठस्थ कर लें और पूजा प्रारम्भ करने से पूर्व भावपूर्वक इसका मानसिक पाठ करें। मानसिक पूजा का तात्पर्य है मन से ईश्वर को गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्राभरणादि का समर्पण करना। शिव जी अर्जुन के बिल्वपत्र-समर्पण की अपेक्षा भीम की मानसिक पूजा से अधिक प्रसन्न हुए थे।

अनुष्ठान

अवकाश के दिनों में घर में अथवा ऋषिकेश, प्रयाग आदि किसी पवित्र स्थल में गङ्गा अथवा यमुना के तट पर अनुष्ठान करना चाहिए। दूध और फलों का आहार लेते हुए, मौन रह

कर, तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हुए कुल एक लाख अथवा एक करोड़ जप करना चाहिए । इससे अद्भुत फल तथा चित्तशुद्धि की प्राप्ति होती है तथा हरिदर्शन प्राप्त होते हैं । यदि यह छः महीने तक कर सकें तो बहुत ही अच्छा है । यदि शुभ आध्यात्मिक फल प्राप्त करना है, तो एकान्त स्थान में नैष्ठिक साधना करना नितान्त आवश्यक है ।

षोडश प्रकरण

जपयोग

इस कलिकाल में भगवत्प्राप्ति का केवल जप ही एक सरल उपाय है। स्वामी मधुसूदन सरस्वती को श्रीकृष्ण-मन्त्र के जप द्वारा ही भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन हुए थे। आजकल विज्ञान के प्रभाव से सभी शिक्षित लोगों का विश्वास मन्त्रों पर से उठ गया है। इन्होंने जप करना बिलकुल ही छोड़ दिया है। यह सचमुच बड़े ही खेद की बात है। जब तक खून में गर्मी रहती है तब तक अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग कठजिद्दी, अभिमानी और नास्तिक रहते हैं। उनके मन और मस्तिष्क का एक बार पूरी तरह कायाकल्प कराने की आवश्यकता है। जीवन अल्प है। समय भागा जा रहा है। संसार यातनाओं से पूर्ण है। अविद्या की गाँठ को काट कर निर्वाण-सुख का आनन्द लें। जो दिन जप किये बिना बीतता है उसे आप व्यर्थ ही गया समझें। जो लोग इस संसार में अपना समय केवल खाने-पीने और सोने में खोते हैं और जो जप बिलकुल नहीं करते वे दो पैर वाले पशु हैं।

ईश्वर के नाम या किसी मन्त्र को बार-बार कहने का नाम जप है। इस कलिकाल में अधिकांश मनुष्यों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता; अतः हठयोग का अभ्यास करना बड़ा कठिन है। भगवत्प्राप्ति के लिए जप बड़ा ही सुगम साधन है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सन्त तुकाराम, ध्रुव, प्रह्लाद, वाल्मीकि, रामकृष्ण

परमहंस आदि अनेक भक्तों को भगवन्नाम-जप द्वारा ही मुक्ति प्राप्त हुई थी।

जप योग का एक महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। गीता में भगवान् ने कहा है : 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' अर्थात् यज्ञों में मैं जप-यज्ञ हूँ। कलियुग में तो चिरशान्ति, आनन्द तथा अमरत्व प्राप्त करने का एकमात्र साधन जप ही है। जप करते-करते अपने-आप ही समाधि लग जाती है। जप की आदत डालने से ही जप में सफलता मिल सकती है। जप सदा सात्त्विक भाव से और पवित्रता, प्रेम, भक्ति तथा श्रद्धापूर्वक करना चाहिए। इस प्रकार जप का अभ्यास करने से मनचाही सिद्धियाँ—भक्ति तथा मुक्ति तक—प्राप्त हो सकती हैं।

मन्त्र को लगातार विना रुके कहते रहने का नाम जप है। भगवान् के स्वरूप और गुणों के स्मरण का नाम ही ध्यान है। ध्यान दो तरह का होता है—एक जप-सहित और दूसरा जप-रहित। ध्यान का अभ्यास बढ़ने से जप स्वयं ही छूट जाता है। प्रणव सगुण और निर्गुण दोनों ही है। इसे व्यक्त और अव्यक्त जप भी कहते हैं। व्यक्त ब्रह्म की उपासना में 'ॐ राम' का जप करना चाहिए।

नाम से जिसका बोध होता है वह रूप और नाम अभिन्न हैं। वैसे ही विचार और शब्द भी अभिन्न हैं। जब कोई अपने पुत्र का नाम लेता है तो उसका रूप आप-ही-आप उसके मन में अङ्कित हो जाता है। इसी तरह श्रीराम या श्रीकृष्णं का नाप जपते ही उनके रूप स्वयमेव मानस-नेत्रों के सामने आ जाते हैं; इसलिए जप और ध्यान अभिन्न हैं। वे अलग नहीं किये जा सकते।

जब किसी मन्त्र का जप करने लगें तो ऐसा भाव करें मानो आप अपने इष्टदेव के सामने प्रार्थना कर रहे हैं और इष्टदेव सचमुच आपकी प्रार्थना सुन रहे हैं, मानो वे कृपापूर्ण दृष्टि से और खुले हाथों आपका मनोरथ सिद्ध करने के लिए सामने खड़े हैं।

जप भाव-सहित और मन्त्र का अर्थ समझ कर करें। समस्त पदार्थों में और सर्वत्र भगवान् को व्यापक समझें। मन्त्र-जप करते समय अपने को ईश्वर के निकट ही समझें। उस समय ऐसा समझें कि मानो भगवान् आपके हृदय में विराज रहे हैं और आपके जप को सुन रहे हैं। जप सदा गम्भीरतापूर्वक सच्चे हृदय से विश्वास और श्रद्धापूर्वक करना चाहिए। भगवान् के नाम को जपना उनकी सेवा करना है। जप करते समय मन में श्रद्धा और भक्ति का वैसा ही स्रोत उमड़ते रहना चाहिए जैसा भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन पाने के समय होता है। नाम के प्रभाव में जप करने वाले को पक्का विश्वास होना चाहिए।

मन्त्रयोग एक पूर्ण विज्ञान है। 'मननात् त्रायते इति मन्त्रः' अर्थात् मनन करने से जो मुक्ति दे वही मन्त्र कहलाता है। मन्त्र नाम इसलिए पड़ा कि इसके जपने में मन का प्रयोग होता है। मनन का पहला अक्षर 'मन्' और त्राण का पहला अक्षर 'त्र' इन दोनों के संयोग से मन्त्र शब्द की उत्पत्ति होती है। मन्त्र के जप का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति है।

शब्द-रूपी शरीर में मन्त्र एक प्रत्यक्ष दैवी शक्ति है। मन्त्र स्वयं देवता है। जप करने वाले को मन्त्र और देवता की

अभिन्नता का विचार करना चाहिए । जप करने वाले की यह धारणा जितनी अधिक दृढ़ होगी उतनी ही अधिक मन्त्री वल से उसकी साधना-शक्ति को सहायता मिलेगी । जैसे आग की लपट वायु की सहायता से जोर पकड़ती है वैसे ही जप-कर्त्ता की शक्ति मन्त्र-शक्ति से बढ़ती है।

भक्त की साधना-शक्ति से सुप्त मन्त्र जाग्रत हो उठता है। देवता का मन्त्र अक्षरों का वह समूह है जो जापक की चेतना को देवता का साक्षात्कार करा देता है और मन्त्र जपने वाले की शक्ति को जाग्रत कर देता है। मन्त्र प्रज्वलित तेज अथवा शक्ति का समूह है। मन्त्र-जप द्वारा मनुष्य की सुप्त अलौकिक शक्तियाँ जाग उठती हैं।

मन्त्र-जप से उत्पादक शक्ति उत्पन्न होती है और क्रमशः उसकी वृद्धि होती रहती है। आध्यात्मिक जीवन के पालन में शारीरिक तथा मानसिक एकाग्रता बहुत आवश्यक है। हमारी सब वृत्तियाँ एकाग्र होनी चाहिए। इस तरह एकाग्र हो कर अभ्यास करने से ही आध्यात्मिक तत्त्व का ज्ञान होता है। मन्त्र-जप द्वारा दैवी तथा अलौकिक ज्ञान का उदय होता है। मन्त्र जपने वाला साधक प्रकाश, स्वाधीनता, शक्ति और अमर सुख प्राप्त करता है। मन्त्र को वार-वार जपने से ज्ञान जाग्रत होता है। मन्त्र में ज्ञान तथा चैतन्य उसी तरह छिपा रहता है जैसे काठ में अग्नि।

शब्द चार मूल अवस्थाओं में स्थित हैं-(१) वैखरी अर्थात् प्रतिदिन जार से वोलने में जिसे लोग आपसे कहते-सुनते हैं, (२) मध्यमा इस तरह का शब्द जिसे स्थूल कान नहीं सुन सके तथा जो बहुत धीरे से बोला जाय। इसे हिरण्यगर्भ भी

कहते हैं, (३) पश्यन्ती मध्यमा की अपेक्षा और भी हलका या सूक्ष्म शब्द तथा (४) परा जो शब्द की सूक्ष्मतम या कारण अवस्था है। यही ईश्वरीय शक्ति का द्योतक है। यह अव्यक्त और भेद-रहित है। हम इसे भाव-भाषा कह सकते हैं। वैखरी वाणी के समान परा वाणी के शब्द भिन्न-भिन्न भाषाओं की तरह भिन्न नहीं होते। परा शब्द का रूप सर्वत्र समान होता है। यह वाणी का सार है जिससे संसार की उत्पत्ति होती है।

मन्त्र का अर्थ न जानते हुए भी जप का एक वार अभ्यास करने से साधक को उच्चतम सिद्धि प्राप्त हो सकती है। समय कुछ अधिक अवश्य लगेगा। भगवान् के नामों या मन्त्र में अकथनीय और अचिन्त्य शक्ति भरी है। यदि मन्त्र का अर्थ समझते हुए मन्त्र का जप करें तो ईश्वरीय ज्ञान शीघ्र प्राप्त हो जायगा।

मन्त्र का जप करते रहने से काम, क्रोध, लोभ आदि मानसिक मल स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। जैसे आइने पर से मैल साफ हो जाने पर देखने वाला अपना मुँह साफ-साफ देख सकता है वैसे ही मन के आइने पर से काम, क्रोध, लोभ आदि मानसिक मलों के हट जाने से परमात्मा का दर्शन स्पष्ट रूप से होता है।

जैसे साबुन लगाने से कपड़ा साफ हो जाता है वैसे ही जप करने से मन साफ हो जाता है। मन्त्र मन को साफ करने वाला एक प्रकार का साबुन है। जैसे अग्नि सुवर्ण के मल को जला कर सोने को चमका देती है वैसे ही मन्त्र-जप भी मन को साफ करके चमका देता है। एकाग्र हो कर या अर्थ समझ कर भाव और श्रद्धा-सहित मन्त्र को थोड़ा भी जपने से मन का

मैल साफ हो जाता है। ईश्वर का नाम या अपनी रुचि का कोई मन्त्र नियमपूर्वक नित्य जपना चाहिए। मन्त्र जपने से पाप नष्ट हो जाते हैं और चिरशान्ति, अनन्त-सुख तथा अमर जीवन प्राप्त हो जाता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

जप के लाभ

सांसारिक वस्तुओं की ओर जाने वाली विचार-धारा को जप रोकता है। जप करने से मन परमात्मा की ओर जाता है, जिससे स्थायी आनन्द प्राप्त होता है। प्रत्येक मन्त्र में मन्त्र-चैतन्य छिपा रहता है। जब कभी साधक मन्त्र-जप के साधन में सुस्ती दिखलाता है तब मन्त्र-शक्ति ही साधक को जप की ओर उत्साहित और प्रेरित करती है। कुछ महीने नित्य नियमपूर्वक जप करते रहने से मन और मस्तिष्क में नवीन पथ खुल जाते हैं।

जैसे एक बरतन से दूसरे बरतन में तेल उँड़ेला जाता है वैसे ही जप करते समय समस्त दैवी गुण भगवान् की ओर से जप करने वाले के मन में आने लगते हैं। जप करते रहने से मन की प्रकृति बदल जाती है, मन सतोगुणी हो जाता है।

जप करते रहने से अतिशय इन्द्रियपरायणता नष्ट हो जाती है और मन रजोगुण से हट कर सतोगुण की तरफ आ जाता है। जप करते रहने से मन की शक्ति भी बढ़ती है और शान्ति भी मिलती है। जप करते रहने से अन्तर्दृष्टि खुल जाती है। जप से मन की बाहर भागने वाली प्रवृत्ति रुकती है तथा बुरे विचार और कुप्रवृत्तियों की ओर मन का झुकाव कम होता है। आडम्बरहीन तप में कठोरता तथा सङ्कल्पों में दृढ़ता आ जाती है। जिन्हें लोग अपना इष्टदेव मानते हैं, धीरे-धीरे

उन्हीं भगवान् के दर्शन हो जाते हैं। इसी को आत्म-साक्षात्कार भी कहते हैं।

निरन्तर जप तथा पूजन करते रहने से मन शुद्ध होता है, मन अच्छे और पवित्र भावों से पूरित हो जाता है तथा अच्छे संस्कार पुष्ट होते हैं। 'आदमी जैसा सोचता है वैसा ही होता है,' यह मनोविज्ञान का नियम है। जिस मनुष्य का मन अच्छी और पवित्र बातें सोचता है उसके मन में अच्छे ही विचारों का उदय होता है। निरन्तर अच्छे विचारों के आने से उसका चरित्र अच्छा हो जाता है। जव साधक जप और पूजन करते समय भगवान् का ध्यान करता है उस समय मन भी भगवद्रूप ही हो जाता है। ध्येय का प्रभाव मन पर वहुत पड़ता है। इसी को संस्कार कहते हैं। किसी कार्य को वार-वार करने से उस कार्य के संस्कार प्रवल पड़ते हैं और इस प्रकार धीरे-धीरे उस कार्य-विशेष के करने का मन अभ्यासी हो जाता है। जो सदा दिव्य आत्माओं का ध्यान करता है वह निरन्तर ध्यान के अभ्यास से स्वयं देवता वन जाता है। उसके भाव शुद्ध हो कर दिव्य वन जाते हैं। ध्याता और ध्येय, पुजारी और देव, विचार करने वाला और विचार निरन्तर अभ्यास से एक हो जाते हैं। इसी को समाधि कहते हैं। पूजा, उपासना या जप करने का यही फल है।

हरि या श्रीराम का मानसिक जप एक ऐसी अचूक दवा है जिससे सव रोग अच्छे हो जाते हैं। यह जप किसी भी कारण या परिस्थिति में वन्द नहीं करना चाहिए। भूखी आत्मा का यह आध्यात्मिक भोजन है। ईसामसीह ने कहा है—"आप केवल रोटी के सहारे मुश्किल से जीवित रह सकते हैं; किन्तु

ईश्वर का नाम तो ऐसा है कि मनुष्य केवल उसी के सहारे मजे में रह सकता है।" जप और ध्यान करते समय जिस अमृत का प्रवाह होता है उसे पी कर आप जीवित रह सकते हैं। मन्त्र का यदि भाव या ध्यान-रहित भी जप किया जाय तो उसका भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। इस तरह जप से भी मन शुद्ध होता है। इस तरह किया हुआ जपमन्त्र चौकीदार का काम करता है। यह बताया करता है कि इस समय सांसारिक विचार मन में प्रविष्ट हो रहे हैं। उसी समय उन विचारों को हटा कर आप मन्त्र का स्मरण करें। खाली जिह्वा से भी मन्त्र कहते रहते से मन का थोड़ा-सा अंश जप में लगा ही रहता है।

भोजन करते समय यदि कोई आपके सामने मल या मूत्र का नाम भी ले तो आपको कै हो जाती है तथा गरम पकौड़ी का नाम सुनते ही आपके मुँह में पानी आ जाता है। प्रत्येक शब्द में शक्ति होती है। जब साधारण शब्दों में ऐसी शक्ति है तब भगवान् के नाम में कितनी शक्ति होगी ! भगवान् का नाम स्मरण करने या जपने से मन के ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। भगवान् के नाम का जप करने से चित्त बदल जाता है, मन के पुराने कुसंस्कार नष्ट हो जाते हैं, उद्दण्ड आसुरी प्रवृत्ति बदल कर सौम्यता आ जाती है और धीरे-धीरे अभ्यास के बढ़ने से भगवान् के दर्शन हो जाते हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। विज्ञानवेत्ता नास्तिको तथा अविश्वासियो ! जागें और इस सत्य को आँखों से देखें। भगवान् का नाम जपें, गायें और कीर्त्तन करें।

नाम-स्मरण ही संसार में एक ऐसी वस्तु है जो सब प्रकार की कठिनाइयों और झगड़ों से मुक्त है। नाम-स्मरण सरल

सुखदायक और सहज है। इसीलिए सब प्रकार के साधनों में नाम-स्मरण या नाम-जप शिरमौर कहा जाता है।

भगवान् का नाम हृदय से श्रद्धा-भक्ति-सहित लेना चाहिए। उस समय सब प्रकार के सांसारिक विचारों को मन से भगा देना चाहिए। मन में केवल भगवान् के ही विचार रहने चाहिए। इसके लिए आपको मेहनत करनी होगी, भगवान् में तन्मय होना पड़ेगा और भगवान् के प्रति अव्यभिचारिणी भक्ति लानी होगी। यदि आपकी भक्ति श्रीकृष्ण में है तो अन्त तक उन्हीं के भक्त बने रहें। सर्वत्र अपने इष्टदेव को ही देखें।

जैसे अपने पुत्र विश्वनाथ का नाम स्मरण करते ही उसके सारे गुण मूर्त्तिमान हो उठते हैं वैसे ही परमात्मा का नाम लेते ही ईश्वर के सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् होने के गुण सामने आ जाने चाहिए।

मन्त्र जपते समय मन में शुद्ध सात्त्विक भाव रहना चाहिए।

जब मन को शुद्ध करने की क्रिया होती है तब वैसा भाव भी धीरे-धीरे आने लगता है।

आरम्भ में जप के लिए माला रखनी चाहिए। जब माला से जप का अभ्यास हो जाय तो मानसिक जप करना चाहिए। प्रतिदिन छः घण्टे जप करने से शीघ्र ही चित्त शुद्ध हो जाता है। अपने गुरु-मन्त्र में पक्का विश्वास होना चाहिए। गुरु मन्त्र को सदा गुप्त रखना चाहिए।

मन्त्र जितना छोटा होता है उतनी ही उसकी एकाग्रता-शक्ति होती है। सब मन्त्रों में राम-मन्त्र उत्तम है। इसका जप भी सरल है।

भक्ति बढ़ाने के साधन

भागवतजनों, साधुओं और संन्यासियों की सेवा, भगवन्नाम-जप, सत्सङ्ग, हरिकीर्त्तन, रामायण, गीतादि का स्वाध्याय, वृन्दावन, पण्ढरपुर, चित्रकूट, अयोध्या या किसी अन्य तीर्थ में निवास—ये छः साधन भक्ति को बढ़ाते हैं।

सप्तदश प्रकरण

उपासना-विज्ञान

विषय-भोगों से मनुष्य को पूर्ण सन्तोष नहीं प्राप्त होता, इसी कारण उसे सदा किसी वस्तु का अभाव खटकता-सा रहता है और वह सदा अशान्त और असन्तुष्ट बना रहता है। तब वह विश्वेश से चेतन सम्पर्क में आना और अमरत्व तथा शाश्वत शान्ति पाना चाहता है। मनुष्य की इस चरम कामना का समाधान पूजा में ही मिलता है। जीवात्मा अपने स्रष्टा परमात्मा से ही मिलना चाहता है। यह पूजा से सधता है। परमेश्वर की महिमा और गरिमा को सुनते ही उसके हृदय में सहज प्रेम और भक्ति प्रस्फुटित हो उठती हैं। अतः मनुष्य को पूजा का एक अधिष्ठान, एक आलम्बन आवश्यक होता है जिससे कि वह अपना प्रेम और अपनी भक्ति उसके चरणों में समर्पित कर सके। पूजा आध्यात्मिक विकास में सहायक होती है और क्रमशः भक्त को भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन कराती है। चूँकि सीमित और सान्त चित्त के द्वारा असीम और अनन्त का आकलन असम्भव है, इसलिए विभु-स्वरूप परमेश्वर की अवर और सीमित रूप की कल्पना का आविर्भाव हुआ। निर्गुण ब्रह्म ही श्रद्धालु भक्तों की उपासना के लिए सगुण और साकार बन जाता है।

भक्त का प्रभु के प्रति भक्ति तथा प्रेम का निवेदन ही पूजा है, उसके प्रति परम श्रद्धा व्यक्त करना ही पूजा है, उसके साथ जाग्रत

सम्बन्ध स्थापित करने की उत्कण्ठा का नाम ही पूजा है, उसके चरणारविन्दों में ही सदा रहने की तीव्र आकांक्षा ही पूजा है, उसमें लीन हो जाने की एकमात्र तड़प का नाम ही पूजा है। भक्त भगवान् से वियोग की तीव्र वेदना अनुभव करता है, अश्रुधारा बहने लगती है। वह उसकी स्तुति करता है, उसकी महिमा, उसकी दिव्यता और उसकी गरिमा का गान करता है। पूजा का रूप प्रार्थना हो सकता है, स्तुति का हो सकता है, ध्यान का हो सकता है या कोर्त्तन का भी हो सकता है।

भक्त के विकास और उन्नति के अनुरूप पूजा का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। प्रकृति-पूजा होती है। पारसी लोग अग्नि-तत्त्व की उपासना करते हैं। हिन्दू लोग गङ्गा, गाय तथा अश्वत्थ वृक्ष की पूजा करते हैं। वेदों में इन्द्र, वरुण, वायु आदि के स्तवन पाये जाते हैं। यह प्रकृति-पूजा है। वीर-पूजा भी होती है। शिवाजी, नेपोलियन आदि वीर पुरुषों की पूजा आज भी होती है। वीर-पूजा में व्यक्ति उस वीर पुरुष के सारे गुणों को अपनाता है। महापुरुषों का जन्म-दिन या पुण्य-दिवस मनाना भी पूजा का ही एक रूप है। अवशेषों की भी पूजा होती है। मृत व्यक्तियों के बाल और अस्थि की लोग पूजा करते हैं। इसी प्रकार पितृ-पूजा भी की जाती है।

गुरु, ऋषि या देवताओं की भी पूजा होती है। मनुष्य का ज्यों-ज्यों विकास होता जाता है, त्यों-त्यों उसकी पूजा का स्तर भी बदलता जाता है और निम्न स्तर की पूजाएँ अपने-आप छूटती जाती हैं। इसलिए जो व्यक्ति ऊँचे स्तर पर हैं उन्हें निम्न स्तर में रहने वाले व्यक्ति को हेय नहीं समझना चाहिए। किसी भी प्रकार की पूजा करते समय उस एक तत्त्व

या चेतन पदार्थ को नहीं भूलना चाहिए, जो अन्तर्हित, अन्तर्यामी और अन्तर्वासी है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, गणपति, कार्त्तिकेय, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, इन्द्र, अग्नि आदि उस एक ईश्वर के ही विभिन्न रूप या पहलू हैं। किसी भी नाम अथवा रूप की पूजा की जाय ईश्वर की ही पूजा होती है; ईश्वर ही उस रूप में पूजित होता है। पूजा भगवान् को ही पहुँचती है।

सब उसी मूलभूत सद्वस्तु की ही, ईश्वर की ही उपासना करते हैं। उपासकों की भिन्न-भिन्न दृष्टि के अनुसार उपास्य भगवान् के नाम और रूप भिन्न-भिन्न होते हैं। पूजा चाहे ईसा की हो या पैगम्बर मुहम्मद की, गुरुनानक की हो या भगवान् बुद्ध की या महावीर की; सब वस्तुतः ईश्वर की ही पूजा है। ये सब उसके ही रूप हैं।

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता : ४-११)

—हे अर्जुन ! जो मेरे को जिस रूप में भजते हैं, उन्हें मैं उसी रूप में भजता हूँ। इस रहस्य को जान कर ही बुद्धिमान् मनुष्य सब प्रकार से मेरे मार्ग के अनुसार वतते हैं।"

"यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्॥

(गीता : ७-२१)

—जो-जो सकामी भक्त जिस-जिस देवता के स्वरूप को

श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस-उस भक्त की मैं उस ही देवता के प्रति श्रद्धा को स्थिर करता हूँ।"

अज्ञानी और सङ्कीर्ण मनोवृत्ति वाले लोग आपस में व्यर्थ ही झगड़ते हैं। वे देश की शान्ति भङ्ग करते हैं। सब धर्मों का सार तत्त्व समान है। अनावश्यक तत्त्वों में भिन्नता रहेगी ही। जो भी झगड़ा है वह अनावश्यक तत्त्व को ले कर ही है। सब धर्मों को यह समान रूप से मान्य है कि 'सदाचार, सत्य-भाषण, ब्रह्मचर्य, विश्व-प्रेम, सद्गुण सम्पत्ति, ध्यान और भक्ति के द्वारा मनुष्य को मोक्ष प्राप्त करना चाहिए।'

'साधना' शब्द 'साध्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'प्रयत्न करना', 'किसी फल की प्राप्ति के लिए प्रयास करना।' प्रयत्न करने वाला व्यक्ति साधक कहलाता है और जो वह फल या सिद्धि प्राप्त करता है, उसे सिद्ध कहते हैं। पूर्ण सिद्ध वह है जिसने ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया हो। साधना के विना हरि-दर्शन सम्भव नहीं है। आध्यात्मिक प्रयास मात्र को साधना कहते हैं। साधना और अभ्यास पर्यायवाची शब्द हैं। साधना से जो प्राप्त किया जाता है, उसे साध्य कहते हैं।

पूजा का अर्थ है उपासना। उपासना का अर्थ है ईश्वर के समीप बैठना। उपासना करने वाला उपासक कहलाता है। जिसकी उपासना की जाती है, वह उपास्य है। उपासना एक व्यापक शब्द है, उसके अन्दर नानाविध पूजा का समावेश होता है। उसमें जप, नित्य सन्ध्या, प्रार्थना, स्तोत्रादि सब आते हैं। उपासना के दो प्रकार हैं—एक है अहंग्रह उपासना अर्थात् निर्गुण, निराकार ब्रह्म का ध्यान और दूसरा है सगुणो-

पासना अर्थात् ईश्वर का, उसके रूप, गुण आदि का ध्यान। पहले प्रकार को अव्यक्तोपासना कहते हैं और दूसरे को व्यक्तोपासना। उपासक के अधिकार-भेद के अनुसार अर्थात् उस मार्ग में चलने की उसकी अर्हता के अनुसार उपासना के दो और भेद हैं, स्थूल और सूक्ष्म। जो मूर्त्ति-पूजा करता है, घण्टी बजाता है, गन्ध-पुष्पादि चढ़ाता है, उसकी यह पूजा स्थूल है। जो अपने इष्टदेव की मूर्त्ति का ध्यान करता है, मानसिक चढ़ावे चढ़ाता है, उसकी यह पूजा सूक्ष्म है। मानसिक पूजा ही सूक्ष्म उपासना है।

पूजा शब्द संस्कृत के 'पूज्' धातु से बना है। उसका अर्थ है पूजना। पूजा करना उपासना का एक सादा रूप है। इसमें मूर्त्ति या चित्र की पूजा होती है, मन्त्र पढ़ा जाता है, मूर्त्ति का अभिषेक होता है, पुष्प चढ़ाते हैं, चन्दन-लेप लगाते हैं, नैवेद्य और अर्घ्य देते हैं तथा धूप और कपूर जलाते हैं। इस प्रकार भक्त उस मूर्त्ति या चित्र में अन्तर्गत ईश्वर के प्रति अपना प्रेम समर्पित करता है। इसमें एक प्रमुख बात यह है कि भक्त को किसी भी पूजा-सामग्री के प्रति यह भावना नहीं होनी चाहिए कि यह मेरी है, बल्कि उसे यही समझना चाहिए कि सारी सामग्री और समस्त सम्पत्ति का एकमात्र स्वामी ईश्वर ही है, वह तो उसका संरक्षक मात्र है। तभी उसकी पूजा इष्ट-फल देने योग्य होगी। प्रणाम, पुष्पाञ्जलि आदि सब बाह्य पूजाएँ हैं। ध्यान आन्तरिक पूजा है।

भागवत के एकादश स्कन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव को पूजा का विधान समझाया है : "मूर्त्ति में, वेदी में, अग्नि में, सूर्य में, जल में, हृदय में अथवा ब्राह्मण में, इनमें से चाहे किसी में भी, वह पूजा की आवश्यक सामग्री द्वारा गुरु-

रूप मुझ परमात्मा की आराधना श्रद्धा और भक्तिभाव से करे। वह मेरी कृपा की प्राप्ति के लिए आराधना करे, अन्य किसी कामना से नहीं। साधारण प्रतिमाओं में प्रति बार पूजा के समय मेरा आह्वान और विसर्जन करना चाहिए। चित्त में भी मेरे रूप का ध्यान किया जा सकता है। हृदय में मेरी आराधना भावना मात्र से ही करनी चाहिए।

"मूर्त्तियों को स्नान कराना और उनका अलङ्कार करना चाहिए। उपासक पूजा की सब सामग्री इकट्ठी करके तब बैठे। पूजा-काल में सामग्री लाने के लिए वह आसन से न उठे। वह पूर्व या उत्तर की दिशा को मुख कर कुश पर बैठे। पहले वह अङ्गन्यास और करन्यास करे, तत्पश्चात् वायु से शुद्ध हुए अपने शरीर में ही कुछ काल तक ध्यान करे।

"वह मेरे विषय में ऐसी भावना करे कि प्रकाशमान कर्णिका तथा केसर से युक्त अष्टदल कमल पर मैं विराजमान हूँ। इसके अनन्तर वह सुदर्शन-चक्र, पाञ्चजन्य शङ्ख, गदा, पद्म—मेरे इन आयुधों की और कौस्तुभमणि, वनमाला एवं वक्षस्थल पर श्रीवत्स का पूजन करे। चन्दन, खस, कपूर, अरगजा आदि सुगन्धित वस्तुओं से स्नान कराना चाहिए। पुरुषसूक्त तथा सामगायन आदि का पाठ करना चाहिए। मेरा भक्त वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, पत्र-पुष्प की माला, गन्ध और लेप से मेरा अलङ्कार करे। वह मुझे पाद्य, आचमन, गन्ध, चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप तथा सुन्दर वस्तुएँ समर्पित करे। वह मेरी लीलाओं को गाये, मेरे गुणों का वर्णन करे, नृत्य करे, मेरी स्तुति करे और यह कहता हुआ, 'भगवन् मुझ पर प्रसन्न हों! मुझ पर कृपा करें' मुझे दण्डवत् नमस्कार करे। अपने शिर को मेरे चरणों पर रख कर वह

कहे : 'भगवन् ! जन्म-मृत्यु के चक्र से आप मेरी रक्षा कीजिए। मैंने आपकी शरण ग्रहण की है।'

'इस भाँति मेरी पूजा कर वह मुझे समर्पित किये हुए कुछ पुष्पों को आदरपूर्वक अपने शिर पर धारण करे। किसी भी प्रतिमा में जिसमें कि उसकी श्रद्धा हो और किसी भी विधि से जिसमे उसकी रुचि हो, उपासक मेरी पूजा कर सकता है; क्योंकि मैं सब वस्तुओं में व्याप्त हूँ, मैं सर्वात्मा हूँ और मैं समस्त प्राणियों के और उसके हृदय में भी स्थित हूँ। जो मनुष्य इस प्रकार वैदिक तथा तान्त्रिक क्रियायोग के द्वारा मेरी उपासना करता है, वह इस लोक और परलोक में मुझसे अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है। मन्दिर का निर्माण कराने से मनुष्य को त्रिलोकी का राज और मेरी पूजा करने से ब्रह्म-लोक को प्राप्त करता है। इन तीनों के द्वारा उसे मेरे समान पद प्राप्त होता है।"

आवाहन और प्राणप्रतिष्ठा दो क्रियाएँ हैं जिनसे मूर्त्ति में ईश्वर को अभिमन्त्रित किया जाता है। पूजा की समाप्ति पर देव को विदाई देने की क्रिया को विसर्जन कहते हैं। पाद्य, आचमन, गन्ध, चन्दन, पुष्प आदि समर्पण करने की क्रिया को उपचार कहते हैं।

नित्य पूजा करने से चित्त शुद्ध होता है। उसमें पवित्र और सद्विचार रहते हैं। पुनः पुनः पूजा करते रहने से सत्संस्कार बलवान् होते हैं। 'मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा बनता है'—यह एक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है। जो मङ्गलमय और पवित्र विचारों के विषय में सोचने का अभ्यास करता है, उसकी चित्तवत्ति ही मङ्गलमय हो जाती है। सतत सच्चिन्तन

के कारण उसका चारित्र्य पवित्र और उन्नत बन जाता है। पूजा के समय ईश्वर की मूर्त्ति का ही चिन्तन करने से उसका मन भी तद्रूप हो जाता है। चित्त पर विषय की छाप पड़ती है। यही संस्कार है। किसी कार्य को पुनः पुनः दोहराने से संस्कार बलवान् होता है और मन में उसकी आदत हो जाती है। जो व्यक्ति निरन्तर चिन्तन और मनन से दिव्य विचारों का मन्थन करता रहता है, वह वस्तुतः स्वयं दिव्य बन जाता है; ईश्वरमय हो जाता है। उसके भाव शुद्ध ईश्वरमय बनते हैं। उपासक और उपास्य, ध्याता और ध्येय, चिन्तक और चिन्त्य एक समान हो जाते हैं। यही समाधि है। यही उपासना का फल है।

मनुष्य विचार या कृति का बीज बोता है और चिन्तन और आदत का फल पाता है। वह आदत का बीज बो कर चारित्र्य-रूपी फल पाता है और चारित्र्य-रूपी बीज से भाग्य का फल पाता है। आदत का ही दूसरा रूप स्वभाव है, बल्कि ऐसा कहना चाहिए कि आदत ही स्वभाव है। मनुष्य का भाग्य उसके विचार और कर्मों से निर्मित होता है। वह अपना भाग्य बदल सकता है। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि वह अपने भाग्य का स्वामी है। शुद्ध विचारों से, पवित्र चिन्तन से और प्रबल पुरुषार्थ से मनुष्य अपने भाग्य का विधाता बन सकता है। मार्कण्डेय ने तप और शिवोपासना से अपना भाग्य बदल दिया। विश्वामित्र कठोर तप करके ब्रह्मर्षि बन गये और भाग्य बदल डाला। यदि आपके अन्दर भी दृढ़ सङ्कल्प-शक्ति और लौह निर्णय-शक्ति है, तो आप भी ऐसा कर सकते हैं। योगवासिष्ठ में वसिष्ठ जी श्रीराम को पुरुषार्थ का उपदेश देते हैं। सावित्री ने अपने पातिव्रत्य धर्म के बल पर

अपने पति सत्यवान् का भाग्य वदल दिया था। जिस प्रकार सीधे अक्षरों के स्थान पर तिरछे लिख कर आप अपनी लेखन-शैली वदल सकते हैं, विलकुल उसी प्रकार विचार-शैली वदल कर आप अपना भाग्य भी वदल सकते हैं। अव आप सोचा करते हैं—'मैं अमुक-अमुक हूँ'; क्योंकि अपने को शरीर से और विभिन्न उपाधियों से जोड़ कर सोचते हैं। अव इसका उलटा चिन्तन आरम्भ कर दीजिए। सोचिए कि 'मैं ब्रह्म हूँ, मैं सर्वान्तर्यामी अविनाशी आत्मा हूँ। मैं सर्वव्यापी प्रकाश हूँ, ज्ञान हूँ और शुद्ध बुद्धि हूँ।' आपका भाग्य वदल जायगा। जैसा सोचते हैं वैसा ही वनते हैं। यही साधना है। इसका नाम अहंग्रह-उपासना है। दृढ़ता के साथ इसका अभ्यास करें, अनुभव करें तथा साक्षात्कार करें।

अष्टादश प्रकरण

भक्तियोग-साधन

ईश्वर आपके हृदय और मन का अन्तर्यामी है। वह आपके विचारों का मौन साक्षी है। आप उससे कुछ भी छिपा नहीं सकते। वञ्चना छोड़ कर ऋजु स्वभाव अपनाइए।

हरि-भक्त सर्वदा विनीत रहता है। उसके ओंठों पर सदा हरि-नाम रहता है। एकान्त में अविरल अश्रु धारा वहती है। वह बड़ा श्रद्धालु होता है। वह सवका मित्र होता है। वह समदर्शी होता है। वह सदा भला ही करता है। वह दूसरों के दिल को चोट नहीं पहुँचाता। उसका चरित्र निष्कलङ्क होता है। वह दूसरों की सम्पत्ति का लोभ नहीं करता और भूतमात्र में हरि का दर्शन करता है।

भक्ति पवत को हिला सकती है। उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है। वह मीरा की भक्ति ही तो थी जिसने सर्प को पुष्पमाला में बदल दिया, विष को अमृत वना दिया, कँटीली शय्या को पुष्पशय्या वना दिया। प्रह्लाद की भक्ति ने ही अग्नि को हिमवत् शीतल वना दिया।

भक्त को कल्याण-गुणों का साकार रूप वनना चाहिए। प्राणिमात्र का हित करने के लिए उसे सदा सन्नद्ध रहना चाहिए। सर्व भूतों के हित में सदा निरत रहने वाला भक्त शाश्वत शान्ति पाता है। सबके कल्याण में जो आनन्दित होता

है, उसे हरि-दर्शन होते हैं । उसमें क्रमशः अद्वैतानुभूति विकसित होती है ।

भक्ति का विकास करने के छः साधन हैं—भागवत सेवा; हरि-नाम-जप; सत्सङ्ग, भागवत, रामायण आदि का पाठ; नाम-सङ्कीर्त्तन; और वृन्दावन, पण्ढरपुर, चित्रकूट या अयोध्या में निवास ।

भक्ति-विकास के वाधक दो आन्तरिक शत्रु हैं—काम और क्रोध । मनुसंहिता के अनुसार 'काम' के दश अनुचर हैं-- शिकार खेलना, जुआ खेलना, दिन में सोना, निन्दा करना, दुष्टनारी-सहवास, सुरापान, प्रेमगीत-गायन, नृत्य, अश्लील सङ्गीत और निरुद्देश्य भटकना ।

क्रोध के आठ सहचारी भाव हैं । सभी दुर्गुण क्रोध से उत्पन्न होते हैं । क्रोध को मिटा दें तो शेष सब दोष अपने-आप नष्ट हो जाते हैं । वे आठ दुर्गुण ये हैं—अन्याय, क्रूरता, हिंसा, असूया, लोभ, कटु वचन, शठता और दम्भ ।

भक्तों की पहचान क्या है ? भगवान् श्रीकृष्ण ने इसका लक्षण बताया है । उसे आप भागवत में देख सकते हैं । "वे किसी बात की चिन्ता नहीं करते । उनका चित्त मुझ (भगवान्) में स्थिर रहता है । वे अत्यन्त विनयी और समदर्शी होते हैं । किसी व्यक्ति या वस्तु के विषय में उन्हें आसक्ति नहीं होती । वे 'ममभाव' और 'अहंभाव' से शून्य होते हैं । सुख-दुःख का भेद वे नहीं करते । दूसरे से वे कुछ भी नहीं ग्रहण करते हैं । वे शीत, उष्ण, दुःख, पीड़ा सब सह सकते हैं तथा प्राणिमात्र से

प्रेम करते हैं। उनका कोई शत्रु नहीं होता है। वे शान्त रहते हैं। उनका चारित्र्य आदर्श होता है।"

अब उच्च कोटि के साधकों की साधना के विषय में विचार करें। अध्यात्म-मार्ग में शीघ्र और सुदृढ़ प्रगति के लिए यह बहुत ही उपयोगी है। प्रातः चार बजे उठिए। जिस किसी भी आसन में बैठने का अभ्यास हो, उसमें बैठ कर जप आरम्भ कीजिए। चौदह घण्टे तक न कुछ खाइए न पीजिए। आसन भी न छोड़िए। हो सके तो सूर्यास्त तक मूत्र के वेग को रोके रखिए। अपना आसन भी न बदलें तो अच्छा होगा। सूर्यास्त के समय जप समाप्त कीजिए। सायङ्काल के अनन्तर फल, दूध और खीर लीजिए। गृहस्थ लोग छुट्टियों के दिनों में इस साधना को कर सकते हैं। महीने में, पक्ष में या सप्ताह में एक बार इस साधना को करें।

एक अन्य दश-दिवसीय साधना है। बड़े दिन की छुट्टियों में, दुर्गा-पूजा या ग्रीष्मकालीन अवकाश में इसे कर सकते हैं। एक हवादार कमरे में अपने को बन्द कर लीजिए। किसी से बोलें नहीं, न किसी को देखें, न कुछ सुनें। प्रातः चार बजे उठें। अपने इष्टदेव का मन्त्र अथवा अपना गुरुमन्त्र जपिए और सूर्यास्त होने पर समाप्त कीजिए। तब फल, दूध या खीर लीजिए। एक-दो घण्टे विश्राम लीजिए, लेकिन जप जारी रहे। फिर विधिवत् जप आरम्भ कीजिए। रात्रि के ग्यारह बजे सोइए। जप के साथ ध्यान भी कर सकते हैं। कमरे के अन्दर ही स्नान, भोजन आदि सबकी व्यवस्था कर लीजिए। हो सके तो दो कमरे रख लीजिए, एक स्नानादि के लिए और दूसरा जप-ध्यान के लिए। इस प्रकार वर्ष में चार बार कीजिए। यह

क्रम चालीस दिन तक लगातार चलाया जा सकता है। आप देखेंगे, इसका अनुभव बड़ा भव्य होता है। परिणाम भी अद्भुत आता है। इस बात का मैं विश्वास दिलाता हूँ कि इससे आपको समाधि लगेगी तथा आपको अपने इष्टदेव के दर्शन होंगे।

अब चालीस दिन के अनुष्ठान की बात लीजिए। इसमें प्रति दिन ३००० जप के हिसाब से इन चालीस दिनों में आपको राम-मन्त्र के एक लाख पचीस हजार जप पूरे करने होंगे। अन्तिम पाँच दिन चार हजार जप रोज करने होंगे। प्रातः चार बजे उठिए। पतले कागज पर तीन हजार बार राम-नाम लिखिए। फिर उसको छोटे-छोटे टुकड़ों में काट डालिए। प्रत्येक टुकड़े में एक राम-नाम आना चाहिए। अब आटे की छोटी गोली में हर एक को लपेटिए। इसे लिखने में, आपकी शक्ति और अभ्यास के अनुसार दो तीन घण्टे लगेंगे। फिर एक-एक कर उसे काटना होगा। यह सारा काम एक ही आसन में करना चाहिए। एक ही आसन में बैठना कठिन लगता हो तो आसन बदल सकते हैं; लेकिन आसन छोड़ कर उठना नहीं चाहिए। कुछ लोग केसर और कपूर को मिला कर विशेष प्रकार की स्याही तथा तुलसी-काष्ठ को छील कर बारीक कलम बनाते हैं। यदि आपको उपर्युक्त विशेष स्याही और कलम आदि प्राप्त न हो सकें तो आप चाहें तो सादी कलम तथा स्याही ही व्यवहार में ला सकते हैं। यह अनुष्ठान गङ्गा, यमुना, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी या नर्मदा के किनारे ऋषिकेश, हरिद्वार, वाराणसी या प्रयाग आदि पुण्य-क्षेत्र में करना चाहिए। यदि वहाँ जाना सम्भव न हो सके तो घर पर भी कर सकते हैं। अनुष्ठान के दिनों में फलाहार कीजिए।

उन गोलियों को गङ्गा में विसर्जित कीजिए। आपमें अद्भुत शान्ति पैदा होगी।

पवित्र और एकाग्र मन से रामायण के एक सौ आठ पारायण करने चाहिए। इसमें प्रतिदिन तीन घण्टे समय देने से यह तीन वर्ष में पूरा हो सकता है। एक महीने में तीन पारायण हो जाते हैं। इससे सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और भगवान् राम के दर्शन होते हैं।

परिशिष्ट

(१)

राम-नाम की महिमा

राम से भी उत्कृष्ट क्या है ? वह है राम-नाम । कैसे ? हनुमान् ने राम जी से कहा—"हे प्रभु, आपसे भी बड़ी एक वस्तु है ।" राम को बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने हनुमान् से पूछा—"मुझसे बड़ी वह कौन-सी वस्तु है, हनुमान् ?" हनुमान् ने उत्तर दिया—"हे प्रभु, आपने नाव के सहारे नदी पार की, लेकिन मैं केवल आपके नाम के (प्रभाव और प्रताप के) सहारे समुद्र ही लाँघ गया । निश्चय ही आपका नाम आपसे भी बड़ा है ।"

एक बार महात्मा गान्धी ने अपने भाषण में कहा था—"आपको पूरी श्रद्धा और भक्ति से राम-नाम लेना चाहिए । रामायण पढ़ने से आप तुलसीदास से उस पवित्र नाम की दिव्य महिमा समझ सकेंगे ।

"आप सोचते होंगे कि परमेश्वर के अनेक नामों में से मैं राम-नाम ही लेने को क्यों कहता हूँ । यह सही है कि उन प्रभु के नाम किसी इमली के पेड़ के पत्तों जितने या उनसे भी अधिक होंगे, और मैं केवल 'गाड' (GOD) नाम ही सुझा सकता था; किन्तु 'गाड' शब्द का अर्थ और सन्दर्भ आप क्या

जानें ! 'गाड' शब्द का जप करने को कहता तो उसका अर्थ और प्रसङ्ग आदि सब समझाने के लिए आपको अंग्रेजी की शिक्षा देनी पड़ती और विदेशी लोगों के विचार और उनके रहन-सहन के सम्बन्ध में समझाना अनिवार्य होता।

"परन्तु, राम-नाम सुझाकर मैं एक ऐसा नाम दे रहा हूँ, जिसे इस देश के लोग प्रारम्भ काल से ही पूजते आये हैं; यहाँ के पशु-पक्षी और मिट्टी-पत्थर तक को हजारों वर्षों से यह नाम परिचित है। अहल्या की कथा आप लोग जानते हैं न ? नहीं, ऐसा लगता है कि नहीं जानते। लेकिन रामायण पढ़ने से शीघ्र जान जायेंगे। आप समझ जायेंगे कि किस प्रकार सड़क पर पड़ा पत्थर राह चलते रामचन्द्र जी के चरण-स्पर्श मात्र से ही जीवित हो उठा। आपको राम का पावन नाम ऐसे सुरीले और मधुर स्वर में गाना सीखना चाहिए कि उसे सुनने के लिए पशु-पक्षी भी पलभर थम जायें; उस पवित्र नाम के मधुर स्वर के श्रवण से वृक्ष भी झूमने लग जायें। जब आप ऐसा कर सकेंगे तब मैं निश्चय ही आपके दर्शन के लिए पैदल यात्रा करते हुए बम्बई से चला आऊँगा। उन (राम) के मधुर नाम में हमारे सारे दोष दूर करने की शक्ति है।"

कबीर के लड़के कमाल ने एक रईस से कहा कि आप दो बार राम-नाम लें, आपका कोढ़ दूर हो जायेगा। यह देख कर कबीर ने उसे बहुत धमकाया; क्योंकि कमाल के सुझाव के अनुसार राम-नाम लेने पर भी उस रईस का रोग दूर नहीं हुआ। कबीर को बड़ा क्रोध आया और उसने कमाल से कहा—उस रईस को दो बार राम-नाम लेने का सुझाव दे कर तुमने मेरे कुल को कलङ्कित कर दिया। राम-नाम तो एक बार लेना ही पर्याप्त है। अब जाओ, उस व्यापारी के शिर पर जोर का

डण्डा लगाओ और कहो गङ्गा जी में खड़े हो कर अन्तःकरण से केवल एक वार राम-नाम ले।" कमाल ने अपने पिता के कथनानुसार उस व्यापारी के शिर पर डण्डा दे मारा। उसका शिर फूट गया और रक्त वहने लगा। तव उसने अपने हृदय के अन्तरतम प्रकोष्ठ से वड़े भाव के साथ एक वार राम-नाम लिया और पूर्णतया रोग-मुक्त हो गया।

कवीर ने कमाल को तुलसीदास के पास भेजा। तुलसीदास ने एक तुलसी-दल पर राम का नाम लिखा और उसका रस पानी में मिला कर उस पानी को पाँच सौ कोढ़ियों पर छिड़क दिया। वे सव अच्छे हो गये। कमाल को वड़ा आश्चर्य हुआ। फिर कवीर ने कमाल को सूरदास के पास भेजा। सूरदास ने कमाल से नदी में वहते हुए एक शव को उठा लाने के लिए कहा। सूरदास ने उस शव के कान में एक ही वार केवल 'रा' कहा (पूरा नाम 'राम' नहीं) कि वह शव जीवित हो उठा। ईश्वर-नाम की ऐसी शक्ति है! मित्रो, कालेज के शिक्षित युवको, प्रिय वकीलो, प्राध्यापको, वैद्यो, न्यायाधीशो, झूठे और निरर्थक कालेज-शिक्षण से मत फूलो। पूरे हृदय से श्रद्धा और भक्ति से, सर्वात्मना भावपूर्वक भगवान् का नाम लो और परम सुख का, ज्ञान, शान्ति और अमरता का इसी क्षण अनुभव करो।

कवीर कहते हैं—"जो मनुष्य स्वप्न में भी राम का नाम लिया करता है, मैं चाहूँगा कि मेरे शरीर के चमड़े से उस मनुष्य के पैर की जूतियाँ वनें।'

हरिनाम की महिमा कौन वर्णन कर सकता है? भगवान् के पावन नामों की वड़ाई और शक्ति को कौन जान सकता है? शिवजी की अर्द्धाङ्गिनी पार्वती भी भगवान् के नाम की वास्त-

विक महिमा और महत्त्व उचित शब्दों में वर्णन नहीं कर सकीं। जो कोई हरिनाम गाता है या नाम-श्रवण करता है, वह अनजाने ही अध्यात्म की ऊँची स्थिति में पहुँच जाता है। उसका देहभाव तिरोहित हो जाता है। वह आनन्दमय होता है और अमरता प्रदान करने वाले सुधा-रस का यथेष्ट पान करता है। वह दिव्य मद से मत्त होता है। नाम-जप करने से भक्त अपने में तथा विश्व में प्रभु की महिमा और उनकी चेतना का अनुभव करने लगता है। हरि-नाम कितना प्रिय है! उसका जप करने वाले को कितना सुख, शान्ति और बल मिलता है। हरि-नाम का जप करने वाले धन्य हैं; क्योंकि वे जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं और अमरता तथा परम आनन्द प्राप्त करते हैं।

(२)

कृष्ण की बाँसुरी

वहाँ खड़े हैं मेरे वंशीवाले, हाथ में मुरली लिये, वृन्दावन में, यमुना के पुलिन पर, कदम्ब वृक्ष के तले, मेरे मधुर प्रिय कृष्ण, राधा के प्रेमी, मेरे जीवन के सुख और शान्ति, मेरे अमर सखा। एक रात को जब चन्द्रिका छिटक रही थी, उन्होंने अपनी मुरली की मधुर तान छेड़ दी। सारी गोपियाँ उनके सामने हाँफती हुई आ उपस्थित हुईं। कोई दूध गरम कर रही थी। कई अपने बच्चों की सेवा में लगी थीं। कई अपने पति की सेवा कर रही थीं। सबने अपना काम अधूरा छोड़ दिया और बाल बिखरे अस्त-व्यस्त स्थिति में ही श्रीकृष्ण की मधुर मुरली सुनने के लिए द्रुत गति से भाग आयीं। उनके तो कृष्ण ही सर्वस्व थे। कृष्ण के बिना वे एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती थीं।

श्रीकृष्ण का व्यवहार सदा टेढ़ा है। वे हमेशा टेढ़े खड़े रहते हैं। मुरली भी टेढ़ी पकड़ते हैं। वृन्दावन की गलियाँ भी, जहाँ वे रहते हैं टेढ़ी-मेढ़ी हैं। यमुना टेढ़ी है। उनका काम टेढ़ा है। वे टेढ़ी राजनीति से भरे हैं। उनका दर्शन टेढ़ा है, फिर भी वे सबसे अधिक महान् हैं, सर्वोच्च व्यक्ति हैं, प्रेममूर्त्ति हैं तथा पूर्ण योगी हैं। वे षोडश कलायुक्त पूर्ण अवतार हैं। उन्हें समझना अत्यन्त कठिन है।

सभी सन्तों, अवतारों और गुरुओं में श्रीकृष्ण और श्री शङ्कर ये दो आदर्श हैं। ये पूर्ण गुरु थे। ये कर्मयोगी थे, ये भक्त थे, राजयोगी थे और ज्ञानयोगी थे। इन्होंने कर्म, उपासना, योग और ज्ञान का उपदेश दिया। श्रीकृष्ण रणक्षेत्र में सारथी बने। उन्होंने वृन्दावन की वनच्छाया में गोपियों के साथ नृत्य किया, उद्धव और अर्जुन को योग और ज्ञान सिखाया। उनकी गीता में, भ्रमर गीत में चारों प्रकार के योगों का समन्वय है। श्री शङ्कर ने बौद्धों से वाद किया, वाराणसी के राजा के शरीर में परकाय प्रवेश किया, हरि और दक्षिणामूर्त्ति का स्तवन किया, भारत के चार केन्द्रों में मठ स्थापित किये, अद्वैतवाद की प्रतिष्ठापना की, मण्डन मिश्र को शास्त्रार्थ में पराजित किया और दिग्विजय किया। अब तक ऐसा प्रखर प्रतिभाशाली व्यक्ति विश्व में उत्पन्न नहीं हुआ। यह है पूर्णता। यह मस्तिष्क, हृदय और शरीर का सामञ्जस्यपूर्ण विकास है।

न कोई व्यक्ति पूर्णतः पुरुष है और न कोई स्त्री पूर्णतः नारी। दोनों में कुछ पुरुष-अंश और कुछ नारी-अंश का मिश्रण रहता है। कई पुरुष ऐसे हैं जिनके स्वभाव में नारी-अंश प्रधान होता है। समाज में इस प्रकार के अनगिनत उदाहरण पाये जाते हैं। इसी प्रकार कोई मनुष्य पूर्णतया

बौद्धिक नहीं है और न पूर्णतया भावुक ही। सबमें दोनों का मिश्रण रहता है। यह सम्भव है कि कोई अधिक बुद्धि वाला हो, उसमें बौद्धिक तत्त्व अधिक विकसित हों और इसी प्रकार कोई अधिक भावुक हो और भावना के तत्त्व उसमें अधिक विकसित हुए हों। कुछ मूर्ख, शुष्क वेदान्ती, अद्वैतवादी बनने का स्वाँग भरते हैं, सङ्कीर्त्तन और नृत्य की अवहेलना करते हैं और कीर्त्तन करने वालों को धत् बताते हैं। स्वामी रामतीर्थ जी, जो कि आदर्श वेदान्ती थे ब्रह्मपुरी के वनों में आत्म-विभोर हो कर, पैरों में घुँघरू बाँध कर नाच उठे थे। उनके अन्दर हृदय और मस्तिष्क का सुन्दर समन्वय हुआ था। गौराङ्ग महाप्रभु अद्वितीय प्रतिभाशाली थे, न्यायाचार्य थे। वे भी नृत्य करते थे और सङ्कीर्त्तन करते थे। उन्होंने भी हृदय और बुद्धि दोनों का सामञ्जस्यपूर्ण विकास कर लिया था। नृत्य एक परिनिष्ठित शास्त्र है। नृत्य आध्यात्मिक और दिव्य कृति है। इस शास्त्र के प्रवर्तक भगवान् कृष्ण और भगवान् शिव हैं। उसमें अभिनय के द्वारा ही छः भावों को प्रकट किया जाता है। उत्पत्ति, विनाश, गति, अगति, अविद्या और विद्या—ये छः भाव हैं। कृष्ण हाथ में मुरली लिये इन छः भावों को प्रकट करते हुए कैसे खड़े हैं, देखें। हे नीरस और एकाङ्गी वेदान्तियो! वितण्डावाद छोड़ें। समझदार बनें। शुष्क और निरर्थक विचार छोड़ें। हृदय, मस्तिष्क और शरीर का विकास करें और पूर्णता प्राप्त करें। जब तक आपका हृदय विकसित न होगा, तब तक आपकी मुक्ति की तिलमात्र भी सम्भावना नहीं है। प्रिय मित्रो! इतना याद रखें।

श्रीकृष्ण की मुरली स्वातन्त्र्य का अथवा प्रणव का प्रतीक है। उन्होंने मुरली के द्वारा प्रेम सिखाया। उन्होंने अपनी मुरली से निःसृत ओङ्कार-ध्वनि से विश्व का सृजन किया। वह

अपने दाहिने पैर के अँगूठे पर खड़े हैं। यह वेदान्त के सिद्धान्त 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' का चिह्न है। उनके खड़े होने की भङ्गी में तीन झुकाव हैं। इसमे तीन गुणों का द्योतन होता है, जिनसे यह विश्व बना है। राधा की ओर दृष्टि निक्षेप करते हैं और प्रकृति को सञ्चालित करते हैं। वे पहली गति हैं। वे जिस पद्मपुष्प पर खड़े हैं, वह विश्व का प्रतीक है।

रूपात्मक भाषा में वृन्दावन हृदय है, राधा मन है, गोपियाँ शरीरस्थ नाडियाँ और इन्द्रियाँ हैं। कृष्ण की मुरली से निकलने वाली मनोहर तान हृदय से निकलने वाला अनहद-नाद है। परमधाम है सहस्रार-चक्र। भगवान् कृष्ण ही परब्रह्म हैं। पाँच किले ही पञ्चकोश हैं। प्राण पहरेदार हैं। षट्चक्र ही द्वार हैं। अमरता ही यमुना है। कदम्ब वृक्ष शिरोमुकुट है। मन ब्रह्म में लीन होता है, राधा कृष्ण में एक हो जाती है। यही रासलीला है।

राधा ने कृष्ण से पूछा—"हे प्रियतम, आपको इस मुरली में मुझसे भी अधिक प्रेम क्यों है ? उसने ऐसा क्या पुण्य किया है कि सदा आपके अधरों से लगी रहती है ? हे प्रभु, मुझे समझायें। इसका रहस्य जानने को मैं उत्सुक हूँ।' श्रीकृष्ण ने कहा—"यह मुरली मुझे अत्यन्त प्रिय है। इसमें कुछ अद्भुत गुण हैं। मेरे हाथ में आने से पहले ही इसने अपना सारा अहङ्कार मिटा दिया था। यह अन्दर से पूर्णतया शून्य बन गयी थी। तभी मैं उससे अपनी इच्छानुसार जो भी राग, रागिनी, तान बजाना चाहूँ, बजा सकता हूँ। यदि तुम भी बिलकुल इसी तरह बनोगी, अपने अन्दर का सारा अहङ्कार पूरा-पूरा निकाल दोगी और मुझे सर्वथा आत्मसमर्पण करोगी तो मैं तुमसे इस मुरली की तरह ही प्रेम करूँगा।"

ईश्वर की सृष्टि में यह शरीर ही मुरली है। यदि हम अपना अहङ्कार मिटा सकें, उन प्रभु के चरणों में सम्पूर्ण आत्म-निवेदन कर सकें, लेशमात्र भी न बचा कर सर्वात्मना उनके हाथों अपना समर्पण कर सकें, तो वे अवश्य ही इस शरीर-रूपी मुरली को बजायेंगे और इसमें से मधुरतम तान निकालेंगे। आपकी इच्छा उनकी इच्छा में मिल जायेगी। हमारे शरीर, मन और इन्द्रिय-रूपी साधनों से वे अबाध रूप से काम करेंगे। तब हम बिना किसी चिन्ता, दुःख और परेशानी के आराम से रह सकेंगे तथा विश्व की लीला को साक्षीरूपेण देख सकेंगे। तब हमारी साधना 'दिन दूनी और रात चौगुनी' प्रगति करती जायेगी; क्योंकि ईश्वर की कृपा हमारे माध्यम से काम करेगी। आपको कोई दूसरी साधना करने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना करें कि सर्वभावेन, सम्पूर्ण हृदय से ईश्वर के हाथों में अपने को समर्पित कर दें। मुरली से यह पाठ सीखें और उसका अनुगमन करें। यदि आपने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों में परिपूर्ण शरणागति कर दी, तो आप शान्ति के साम्राज्य में, अमरता के राज्य में, शाश्वत सुख और चिरन्तन ज्योति के लोक में पहुँच गये। आपको ऐसा सुख मिल गया जो कभी क्षीण नहीं होता, ऐसा जीवन मिल गया जो कभी मृत्यु नहीं पाता तथा आप निर्भयता के उस पार पहुँच गये, जहाँ अन्धकार, सन्देह, दुःख, शोक, पीड़ा और माया नहीं हैं।

मेरे प्रिय अमृतपुत्रो, वृन्दावन की गलियों में भगवान् कृष्ण अब भी विचर रहे हैं। उन्हें आप वास्तव में देखना चाहें तो कुन्जगली में और सेवाकुन्ज में देख सकते हैं। वे व्रजराज हैं, तीनों लोकों के अद्वितीय प्रभु हैं। प्राचीन काल में उन्होंने जैसे कि मीरा, सूरदास आदि सन्तों को गले लगाया था, वैसे ही वे

अब भी अपनी दोनों बाहें पसारे अपने प्रगाढ प्रेम से आपको गले लगाने के लिए अपने परमधाम में प्रतीक्षा कर रहे हैं। अपना चित्त शुद्ध करें। असद्वासनाओं और अहङ्कार को नष्ट करें। उन वंशीवाले की, वृन्दावन के बाँकेविहारी की मुरली एक बार सुनें। उन आनन्दनिधि के अमरगीत गीता को सुनें और अपनी इस देहरूपी मुरली में उन्हें मधुर स्वर-लहरी छेड़ने दें। इस दुर्लभ अवसर को व्यर्थ न गँवायें। मानव-देह मिलनी अत्यन्त कठिन है।

एकान्त भक्ति और पवित्र भावना से दीन बन कर उन्हें पुकारें। उनके स्वागत में यह गीत गायें, वे प्रत्यक्ष दृष्टि-गोचर होंगे :—

"हे कृष्ण आ जा वंशी बजा जा।
हे कृष्ण आ जा गीता सुना जा।
हे कृष्ण आ जा माखन खा जा।
हे कृष्ण आ जा लीला दिखा जा।"

वृन्दावन के मुरली वाले उन राधाकृष्ण की मुरली हम फिर से सुनें। एक बार हम भी श्री कृष्णचन्द्र के मुखारविन्द से प्रत्यक्ष गीता सुनें, जैसे उस समय अर्जुन ने सुनी थी। उनके साथ और एक बार अत्यन्त निकटता और घनिष्ठता से खेलें और अतीव आनन्द के साथ नाचें, जैसा कि गोपियों और गोप-वालों ने खेला और नृत्य किया था और उन्हीं की तरह हम भी भगवान् में लीन हों। उनके साथ गोकुल में हम भी माखन-मिश्री खायें। उनकी मुरली के समान हम भी अपने शरीर का उपयोग उन्हें करने दें।

राधा जी के समान हम भी उनका नाम (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) हृदय से गायें और उनकी कृपा प्राप्त करें, जो हमें शाश्वत शान्ति और उनका आनन्दमय परमधाम दिलाती है। हम सबको उनका अनुग्रह प्राप्त हो !

(३)

प्रह्लाद की कथा

एक समय ब्रह्मा जी के मानसपुत्र चारों कुमार भगवान् विष्णु के दर्शन के लिए विष्णुलोक को गये। ये पाँच-छः वर्ष के बालक थे, मुख पर दिव्य तेज प्रकाश करता था और ज्ञान में मरीचि आदि अन्य ऋषियों से भी पुराने थे। भगवान् के द्वारपालों ने अभिमानवश ईश्वर की माया से मोहित हो कर इनको विष्णु भगवान् के पास नहीं जाने दिया। कुमारों के श्राप से इनको राक्षस का जन्म मिला। दितिदेवी के दो पुत्र हुए। बड़े का नाम हिरण्यकशिपु था और छोटे का हिरण्याक्ष।

हिरण्याक्ष को भगवान् विष्ण ने वाराह-मूत्ति धारण करके मार दिया। अपने भाई की मृत्यु मे हिरण्यकशिपु को वड़ा क्रोध हुआ। उसने कहा—"दुष्ट और दुर्बल देवताओं ने हरि की सहायता से मेरे भाई को मरवाया है। वे स्वयं दुर्बल थे; अतः मेरे पराक्रमी भाई के सामने, नहीं ठहर सके, इसलिए भाग गये और फिर विष्णु से मदद माँगी। जिस विष्णु ने कपट से वाराह-रूप धर कर मेरे भाई को मारा है, उसकी गरदन मैं घोंट दूंगा।" हिरण्यकशिपु की आज्ञा से राक्षसों ने स्वर्गवासियों

को नष्ट कर डाला। फिर हिरण्यकशिपु अपनी माता के पास गया और सान्त्वनापूर्ण शब्दों से उसका शोक निवारण किया।

हिरण्यकशिपु ने एकछत्र साम्राज्य प्राप्त करने, दुर्जेय शक्ति पाने और शत्रुओं, वृद्धावस्था और मृत्यु से रहित हो जाने के लिए मन्दराचल पर्वत पर बड़ा उग्र तप किया। दोनों भुजाएँ ऊपर उठा कर आकाश की ओर दृष्टि लगा कर अन्न-जल सब-कुछ त्याग कर उसने सौ दिव्य वर्षों तक बड़ी कठिन तपस्या की। ब्रह्मा जी ने दर्शन दे कर कहा—"हिरण्यकशिपु ! मैं तुम्हारी तपस्या से खुश हूँ। तुम वर माँगो।" वह ब्रह्मा जी के दर्शन से बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला "भगवन् ! मुझे यही वरदान दें कि आपके रचे हुए किसी जीव से मेरी मृत्यु न हो।" ब्रह्मा जी 'तथास्तु' कह कर अन्तर्धान हो गये। इस वरदान के बल से उन्मत्त हो कर हिरण्यकशिपु ने इन्द्र से उसका राजसिंहासन बलपूर्वक छीन लिया। वह देवताओं को बड़ा भारी दुःख देने लगा। देवताओं ने मिल कर भगवान् हरि की स्तुति की और अपना त्रास दूर करने के लिए उनसे निवेदन किया। देवताओं को आकाशवाणी सुनायी दी, "हे देवताओ ! कुछ भय मत करो। मैं हिरण्यकशिपु के सारे अत्याचारों को जानता हूँ। मैं उसका नाश यथासमय करूँगा। मेरे दर्शन से तुम सबको आनन्द मिलेगा।" यह आकाशवाणी सुन कर देवताओं ने सुख माना और वे अपने-अपने स्थान को चले गये।

हिरण्यकशिपु के चार पुत्र हुए जिनमें प्रह्लाद सबसे बड़ा था। वह बालकपन से ही बड़ा धर्मात्मा और जितेन्द्रिय था। उसका हृदय भगवान् की सच्ची भक्ति से भरा रहता था। वह सबका मित्र था और सबसे प्रेम करता था। वह सर्वदा

सत्य बोलता था; हर समय भगवान् का ध्यान करता था। उसके अन्दर सभी दिव्य सद्गुण व्याप्त थे। वह भगवान् का अविचल भक्त था। भगवान् के दिव्य प्रेम में कभी वह रोता, कभी हँसने लगता; कभी भगवन्नामों को गाता और दिव्य हर्षातिरेक से नाचने लगता। भगवान् के गुण गाते-गाते उसके रोम पुलकित हो उठते थे और नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती थी। अपने दैनिक व्यवहारों में भी, खाते-पीते, उठते-बैठते वह निरन्तर भगवान् का स्मरण करता रहता था।

प्रह्लाद को शिक्षा के लिए शुक्राचार्य के पुत्रों—असुरगुरु शण्ड और अमर्क के पास भेजा गया। ये प्रह्लाद को और दूसरे राक्षस-बालकों को पढ़ाते थे। प्रह्लाद ने विचार किया कि केवल वही गुरु, पिता, माता और मित्र हो सकता है जो मनुष्य को निरन्तर भगवन्नाम-स्मरण करने की प्रेरणा दे। प्रह्लाद को अपने गुरुओं से इस प्रकार की शिक्षा नहीं मिलती थी, इसलिए वह इस पढ़ाई को व्यर्थ समझता था।

एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को अपनी गोदी में बिठा कर बड़े प्यार से पूछा—"प्रिय पुत्र! अपनी शिक्षा में तुम सबसे श्रेष्ठ क्या मानते हो, कुछ थोड़ा-सा मुझे सुनाओ।" प्रह्लाद ने तुरन्त उत्तर दिया, "हे पिता जी! नरक के मूल कारण अपने गृह को त्याग कर अपने प्रभु की शरण ले कर गम्भीर ध्यान-योग का अभ्यास करने के लिए एकान्तवास में चले जाना मुझे सबसे उत्तम प्रतीत होता है।" हिरण्यकशिपु ने हँस कर कहा, "उन लोगों ने उलटी शिक्षा दे कर मेरे कुमार की बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया है।" उसने गुरुओं को आदेश दिया कि वे राजकुमार को ठीक प्रकार से पढ़ाया करें। राक्षसों के गुरु प्रह्लाद को अपने घर ले गये और उससे पूछा—"प्यारे

प्रह्लाद हमें सच-सच बताओ। तुमने ये उलटी-पलटी बातें कैसे सीख लीं। यह तो बालक की बुद्धि से बाहर की बातें हैं।" प्रह्लाद ने कहा, "पूज्य गुरु जी! जैसे चुम्बक के सामने लोहा अपने-आप ही चलायमान हो जाता है उसी प्रकार भगवान् हरि के सामने मेरी बुद्धि भी स्वयं ही गतिशील हो जाती है। अगले श्वास का कुछ भरोसा नहीं। किसी क्षण भी इसकी गति रुक सकती है। इसलिए मनुष्य को बालकपन से ही भगवन्नाम के उच्चारण के सिवाय और कुछ बोलना ही नहीं चाहिए।"

फिर गुरुओं ने प्रह्लाद को इस प्रकार धमकाया—"छड़ी तो लाओ जो जाति का सर्वनाश करने वाला कुल-कलङ्क है, जिसकी बुद्धि हरिनाम रटने से भ्रष्ट हो गयी है उसे दण्ड अवश्य मिलना चाहिए। यह तो चन्दन के वन में काँटे वाला वृक्ष खड़ा हो गया है। यह उलटी बुद्धि वाला बालक विष्णु के हाथ में कुल्हाड़े के समान हो गया है जो असुरों की जड़ काट रहा है। भविष्य में तुम कभी हरिनाम मत लेना।"

कुछ महीने पश्चात् दोनों गुरु प्रह्लाद को भलीभाँति विद्या सिखा कर उसके पिता के पास ले गये। हिरण्यकशिपु ने अत्यन्त प्रेम से प्रह्लाद को अपनी गोदी में बिठा कर पूछा, "हे प्यारे पुत्र! तुमने इतने दिनों तक जो-कुछ सीखा है उसका सार मुझे सुनाओ।" प्रह्लाद ने उत्तर दिया, "भगवान् की लीलाओं को सुनना, उनके नाम और गुणों को गाना, निरन्तर उनको स्मरण करते रहना, उनके पावन चरण-कमलों की सेवा करना, उनको भेंट चढ़ाना, नमस्कार करना, सेवा करना, मित्र बनाना और आत्म-निवेदन—ये ही नौ प्रकार की भक्ति हैं जिसका अभ्यास प्राणी को भगवान् के प्रति करना चाहिए। मैं तो इनको ही सर्वोत्तम पाठ मानता हूँ।" अपने पुत्र के ऐसे

वचन सुन कर हिरण्यकशिपु अत्यन्त निराश हुआ और अध्यापकों से बोला, 'अरे कुटिल बुद्धि मन्दभाग्य ब्राह्मणो ! तुमने मेरे पुत्र को ये निरर्थक पाठ क्यों पढ़ाये हैं। यह मेरी बात को न मानता हुआ मेरे शत्रु विष्णु में अनुराग रखता है। तुम लोग इसको मेरे सर्वनाश का पाठ पढ़ा रहे हो ।" अध्यापकों ने भयभीत हो कर उत्तर दिया— 'महाराज ! हमारे शिर पर दोष न लगाइए। हमने इसको ऐसा कोई पाठ नहीं पढ़ाया है । यह तो इसकी अपनी ही स्वाभाविक बुद्धि है। इसने कभी हमारी बात नहीं मानी और न हमारे पढ़ाये हुए पाठ को याद किया; इसीलिए हम इसे यहाँ आपके सामने लाये हैं।"

फिर हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र से पूछा—"यदि ये पाठ तुम्हें तुम्हारे गुरुओं ने नहीं पढ़ाये हैं तो तुम्हें यह कुटिल बुद्धि कहाँ से और कैसे प्राप्त हुई ?" प्रह्लाद ने शान्ति से उत्तर दिया, "संसारी मनुष्य बारम्बार विषय-सुखों को भोगते हैं। इनके मन अशुद्ध होते हैं और इन्द्रियाँ असंयत। ये बारम्बार गर्भावास में आते हैं। उनके मन भगवान् के चरण-कमलों में नहीं लग सकते। उनके मन विषय-वासनाओं से भरे रहते हैं। उनमें विचार-शक्ति नहीं होती। वे केवल विषय-भोगों के पीछे दौड़ते रहते हैं। ये अज्ञानी मनुष्य अन्धे होते हैं। जब सत्सङ्ग के द्वारा और भक्ति से इनकी अविद्या दूर होती है, तब इनकी बुद्धि शुद्ध होती है।"

ये बातें सुन कर हिरण्यकशिपु क्रोध के मारे तमतमा गया, ओंठ चबाने लगा और उसने प्रह्लाद को गोदी में से धकेल दिया। क्रोध से उसके नेत्र लाल हो गये। वह असुरों से कहने लगा— "हे बलवान् असुरो ! इस बालक को तुरन्त मार डालो।

इसकी गरदन उड़ा दो। इसने सचमुच पितृघात किया है। जिस विष्णु ने इसके चाचा की हत्या की उसी के यह चरण पूजता है। इस पाँच वर्ष के बालक को अपने माता-पिता का स्नेह नहीं रहा। सब प्रकार के घातक उपाय करके इसे मार डालो, हाथियों से कुचलवा दो, विषैले सर्पों से कटा दो, घातक (मारण के) मन्त्रों के अभिचार से मार दो, पर्वत से गिरा दो, बन्द कोठरी में डाल दो, विष दे दो, भूखा मार दो, शीत, वायु और अग्नि के हवाले कर दो।" असुरों ने सभी उपाय करके देख लिये; परन्तु सब व्यर्थ हुए। वे अपने प्रयत्न में निष्फल रहे। सारी यन्त्रणाओं को भोगता हुआ भी प्रह्लाद बड़ी प्रसन्नता से भगवन्नाम-उच्चारण करता रहा। उसका किसी बात से भी बाल बाँका नहीं हुआ। हिरण्यकशिपु इस बालक को मरवा डालने में सफल नहीं हो सका। अन्त में दुःखभरे हृदय से उसने कहा "यह लड़का मृत्युरहित और निर्भय है। इसकी महिमा अप्रमेय है। निस्सन्देह मैं इसी के द्वेष के कारण मरूँगा, नहीं तो मुझे कोई नहीं मार सकता।"

असुर-गुरुओं शण्ड और अमर्क ने मधुर शब्दों से उसे सान्त्वना दी—"हे असुरों के पूज्य अधिराज! इस बालक को तब तक वरुण-पाश में बाँध कर रखना चाहिए जब तक हमारे पिता शुक्राचार्य लौट कर नहीं आ जाते। समय पा कर और महापुरुषों के उपदेश से यह सीधे रास्ते पर आ जायगा।" हिरण्यकशिपु ने उनसे कहा, "आप लोग इसे राज-धर्म और गृहस्थ-धर्म सिखाइए।" एक दिन गुरु जी कहीं बाहर गये थे। प्रह्लाद ने सारे बालक विद्यार्थियों को इकट्ठा किया और उनसे इस प्रकार कहने लगा—"प्यारे मित्रो! ब्रह्मा से ले कर घास की पत्ती तक सारी सृष्टि एक भ्रममात्र है। यदि कोई चीज

सच्ची है तो वह हरिनाम ही है। हरि समस्त जीवों के स्वामी, शुभ चिन्तक और भूतात्मा हैं। सबको उनके चरणों की पूजा करनी चाहिए। वे ही सबके लिए परमशरण हैं। वे परमानन्द, अमृतत्व और नित्य शान्ति देने वाले हैं। संसारी मनुष्य धन के लोभ में अपना जीवन बेच डालते हैं। वे कामिनी और काञ्चन के लिए अपने प्राण गँवाते हैं। ये पामर मूढ़ जीव ! स्त्रियों के उपदेशों और अपनी प्रबल इन्द्रियों के वश में पड़ कर अपनी बुद्धि खो बैठे हैं। देखो ! विद्वान पुरुष भी संसार में डूबा हुआ है ! भगवान् के सच्चे स्वरूप का चिन्तन करने में वह एक क्षण भी नहीं लगा सकता। क्या यह खेद की बात नहीं है। वह अपने को इस नाशवान् देह से अभिन्न मानता है। इससे विद्या होते हुए भी वह अज्ञान में फँसा हुआ है। वह सदा कहता है 'मैं ब्राह्मण हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं धनवान् हूँ, मैं स्थूल पुरुष हूँ, मैं दुर्बल हूँ, मैं बहरा हूँ, मैं अन्धा हूँ, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा घर है।' उसके चित्त में मैं और मेरापन के विचार बहुत गहरे जमे हुए हैं। आप उसे सच्चा ज्ञानी कैसे कह सकते हैं ?

"जीवन के छः विकार अर्थात् स्थिति, जन्म, वृद्धि, परिणाम, क्षय और मृत्यु शरीर में वर्तते हैं, अविनाशी आत्मा में नहीं। यह आत्मा नित्य, अव्यय, पूर्ण, अविनाशी, अमर, शुद्ध, निर्विकार, स्वयं प्रकाश, देश, काल और कारण से रहित, असङ्ग और मुक्त है। जैसे सुनार सोने को शुद्ध करके उसकी मैल-मिट्टी अलग कर देता है उसी प्रकार आत्मज्ञानी पुरुष अपनी साधना के द्वारा इन भ्रमपूर्ण पञ्चकोशों और त्रिदेहों से अपने को पृथक् कर लेता है और आत्म-दर्शन या ब्रह्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेता है। यह शरीर पञ्चतत्त्व से बना है। इसके ऊपर जिन-

जिन बातों का अध्यारोप किया हुआ है उनको विवेक-विचार के द्वारा हटाते हुए शुद्ध आत्मतत्त्व को प्राप्त कर लें।

"प्यारे मित्रो ! यदि इस संसार में समस्त मीठे पदार्थों से भी मीठी कोई वस्तु है, समस्त मङ्गलदायक वस्तुओं से भी अधिक मङ्गलप्रद कोई वस्तु है, समस्त पवित्र करने वाले पदार्थों में यदि कोई पवित्र करने वाली वस्तु है तो वह केवल हरिनाम ही है। इन संसारी बुद्धि वाले असुरों का साथ छोड़ें। अपने सारे दुष्कर्मों को त्याग दें। सत्सङ्ग करें। परम प्रभु नारायण की शरण में जायें। वह ही ज्ञान, शान्ति और आनन्द की मूर्त्ति हैं।

"भगवान् हरि सबके अन्दर विराजमान हैं। जहाँ उनके भक्त प्रेमपूर्वक कीर्त्तन करते हैं वहाँ वे निरन्तर निवास करते हैं। आप लोगों को भगवान् हरि की भक्ति करनी चाहिए। तभी आपको सच्चा ज्ञान और नित्यस्थायी सुख मिलेगा। इन क्षणिक विषय-भोगों के पीछे दौड़ने से क्या लाभ ? आपके हृदय में स्थित आपके सच्चे मित्र, हितकारी, माता, पिता और गुरु-रूप भगवान् हरि की पूजा करने में कुछ कठिनाई नहीं है। यह अपवित्र, स्थूल शरीर जिसके लिए मनुष्य सारे सुख चाहता है, नाशवान् है। इसको गीदड़, कुत्ते और मछलियाँ खाते हैं। भगवान् शुद्ध प्रेम से प्रसन्न होते हैं। उनको अपना हृदय दे डालें। वे आपसे कोई वस्तु लेना नहीं चाहते। वे बहुत विद्याध्ययन या तप से नहीं प्राप्त होते। मनुष्य की आधी आयु निद्रा में चली जाती है। शेष का अधिकांश बालकपन के अज्ञान, वृद्धावस्था, रोग और कष्टों में बीत जाता है। अब तो आपके पास बहुत कम समय बचा है, फिर विषय-सुखों के पीछे क्यों भागते हैं ? कम-से-कम इस थोड़े से समय को तो भगवान्

की याद में और उनके चरणकमलों में भक्ति बढ़ाने में लगा दें, जिससे इस जन्म-मरण, जरा-दुःखादि से पूर्ण संसार-समुद्र को पार कर सकें। इसलिए हर समय भगवान् के प्रति निष्कपट प्रेम और भक्ति का अभ्यास करें। भगवान् हरि का नाम धन्य है जो पापरूपी पर्वतों के लिए वज्र के समान है, जो संसारी जीवन-रूपी दारुण रोग के लिए अचूक महौषधि है, जो भ्रमरूप रात्रि के अन्धकार को सूर्योदय के समान नष्ट कर देता है, जो संसार के सन्तापों और क्लेशरूपी विशाल वृक्षों को भयङ्कर दावानल के समान नष्ट कर देता है और जो आनन्द के परम-धाम का प्रवेश-द्वार है। एक भी क्षण व्यर्थ मत खोयें। आप अपने आन्तरिक शुद्ध हृदय से हरिनाम-कीर्त्तन करें :—

"पढ़ो पोथी में राम, लिखो तख्ती में राम
देखो खम्भे में राम, हरे राम राम राम।
सुनो कानों से राम, देखो हृदय में राम
बोलो जिह्वा से राम, हरे राम राम राम।।"

जब असुर-बालकों ने प्रह्लाद के ये मधुर वचन सुने तो उन्होंने अपने गुरुओं की बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया। प्रह्लाद के हितकारी उपदेश ने उनके चित्त पर अच्छा प्रभाव डाला। फरसे लिये हुए असुर-बालक भगवान् हरि के दास बनने लगे और उन्होंने अपनी आसुरी-वृत्तिको त्याग कर प्रह्लाद के उप देश के अनुसार कार्य करना आरम्भ कर दिया। गुरुओं ने जब देखा कि सारे लड़के भगवान् विष्णु के सुखदायक नाम गाने लगे और आनन्द से प्रह्लाद के साथ नाचने लगे तो वे प्रह्लाद को ले कर राजा के पास दौड़े चले गये और उन्होंने जा कर राजा से असुर-बालकों का सारा चरित्र और प्रह्लाद का उपदेश कह सुनाया। हिरण्यकशिपु को यह सब सुन कर बड़ा क्रोध आया।

उसने प्रह्लाद से कहा, "हे अभागे, मन्दबुद्धि, दुष्ट, कुलद्रोही ! मैं तुझको मार डालूँगा। तूने मेरी आज्ञा और अपने पितृधर्म की अवहेलना की है।"

प्रह्लाद ने उत्तर दिया, "राजन् ! यह बात नहीं है कि आप बलवान् हैं या मैं। त्रिलोकी को रचने वाले समस्त भूतों के आधार भगवान् हरि सर्वशक्तिमान् हैं। वह सब प्राणियों की आत्मा हैं। वह काल हैं, वह प्राण हैं। वही इन्द्रियों और मन के जीवन हैं। वह तीनों शक्तियों के नियन्ता हैं। वह अन्तर्यामी हैं। वह हमारे सारे कर्मों के साक्षी हैं। वही रक्षक हैं। वह समस्त लोकों की रचना, पालन और संहार करते हैं। बड़ा खेद है कि संसार ने काँच के टुकड़े की (विषय-भोगों की) खोज में बहुमूल्य रत्न (हरिनाम) को भुला दिया है। प्यारे पिता जी! अभिमान में मत फूल जायें और अपनी बलवती इन्द्रियों के झोंके में मत बह जायें। आसुरी स्वभाव को त्याग दें। चित्त की शान्ति प्राप्त करें। भगवान् की भक्ति करें। यह दुष्ट मन ही आपका शत्रु है। आप राजा होने का दावा कैसे कर सकते हैं जब आपके छः प्रबल शत्रु काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, और मात्सर्य आपके मन में विद्यमान हैं ? जिसने इन छहों शत्रुओं का नाश करके मन को जीत लिया है वह राजाधिराज है। देश का सच्चा स्वामी राजा नहीं है। जिसने अपने मन को नहीं जीता उसने कुछ नहीं जीता, भले ही वह सारी पृथ्वी पर क्यों न शासन करता हो।

"पूर्वकाल में भगवान् विष्णु के तेज के सामने पड़ कर बड़े-बड़े शक्तिशाली असुर और मनुष्य इसी प्रकार नष्ट हो चुके हैं जैसे हवा के सामने रूई। अब कोई भी ऐसा नहीं है जो भगवान् विष्णु से नहीं डरता। सच्ची शरण और आश्रय

भक्ति के द्वारा भगवान् विष्णु में ही प्राप्त हो सकते हैं। 'नारायण' महामन्त्र आपकी आँखें खोले। जो भगवान् की पूजा और वन्दना करते हैं वे ही शुद्ध भक्ति के द्वारा मनोवाञ्छित फल प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए निरन्तर उनका ही स्मरण करें और उनके गुण गायें।" यह वचन सुन कर हिरण्यकशिपु आपे से वाहर हो गया और वोला—"अरे मूर्ख! तू वहुत बक-वक करता है। मैं तुझे यमलोक को भेज दूंगा। वह पृथ्वी का दूसरा स्वामी कहाँ है जिसकी तुम बढ़-बढ़ कर प्रशंसा कर रहे हो? वह तुम्हारा हरि, नारायण या विष्णु कहाँ है?"

प्रह्लाद ने कहा, "भगवान् हरि यहाँ हैं, वहाँ हैं, सव जगह हैं।" हिरण्यकशिपु ने पूछा, "तो फिर वह इस खम्भे में क्यों नहीं है?" प्रह्लाद ने उत्तर दिया, "निस्सन्देह वह इस खम्भे में भी हैं।" हिरण्यकशिपु भगवान् को उस खम्भे में नहीं देख सका और चिल्लाया, "मूर्ख बच्चे! मैं इस खम्भे को लात मारता हूँ। देखूँ तेरा हरि इसमें है या नहीं। यदि इसमें हरि नहीं हुआ तो मैं इसी तलवार से तेरा शिर उड़ा दूंगा। देखूँ तेरा हरि तुझे कैसे वचाता है?"

यह कह कर हिरण्यकशिपु अपने सिंहासन से कूद पड़ा और खम्भे में एक ठोकर मारी। खम्भे में से गड़गड़ाहट का वड़ा भारी शब्द हुआ, जिससे सारा ब्रह्माण्ड हिल गया। भगवान् नृसिंह उस खम्भे में से प्रकट हो गये। उनका रूप बड़ा ही भयानक था। कैसा आश्चर्य था! वह रूप न तो मनुष्य का था और न पशु का; किन्तु नर और सिंह का मिला हुआ रूप था। वहुत से राक्षस तो भय के मारे भाग गये।

भगवान् के उस परम तेजस्वी रूप से हिरण्यकशिपु की आँखें

चौंधिया गयीं। उसने तुरन्त ही नृसिंह भगवान् पर झपटने के लिए अपनी ढाल और तलवार सँभाली। जैसे सर्प मेढक को पकड़ लेता है वैसे ही भगवान् ने उसे झपट कर पकड़ लिया और देहली में रख कर अपने पैने नखों से उसी प्रकार फाड़ डाला जैसे गरुड़ सर्प को फाड़ डालता है। उस समय आकाश में देवताओं के विमान छा गये, दिव्य बाजे और दुन्दुभी वजने लगे। गन्धर्वों ने गीत गाये। अप्सराएँ नाचने लगीं। सबने अनेक प्रकार से भगवान् की स्तुति की।

प्रह्लाद दिव्य आनन्द में मग्न हो गया। शरीर में रोमाञ्च हो आया। भक्ति के कारण आँखों से अश्रुधारा वहने लगी। उसने भगवान् के चरणों में अपना मस्तक रख कर कहा— "भगवन्! मैं धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि और योग इन सभी गुणों को भगवान् को प्रसन्न करने में समर्थ नहीं मानता। केवल भक्ति से ही भगवान् प्रसन्न हो सकते हैं। शुद्ध भक्ति के कारण भगवान् गजेन्द्र से सन्तुष्ट हो गये थे।

"जिसने मनसा, वाचा, कर्मणा अपना धन और जीवन भगवान् को ही अर्पण कर दिया है ऐसे श्वपच को भी मैं उस ब्राह्मण से उत्तम मानता हूँ जिसमें उपर्युक्त बारह गुण होते हुए भी आपकी निर्मल भक्ति नहीं है, श्वपच होते हुए भी भक्ति के द्वारा एक अपनी जाति को पुनीत कर देता है और दूसरा अत्यन्त अभिमान के कारण ऐसा नहीं कर सकता। हे दीन-बन्धो! संसार-चक्र में पड़े हुए जीवों को महान् क्लेशों से पिसते हुए देख कर मुझे अत्यन्त त्रास होता है। अपने कर्मपाशों से बँध कर मैं इस अवाञ्छनीय अवस्था में डाल दिया गया हूँ।

हे पतित-पावन ! आप मुझे अपने करुणामय चरण-कमलों में कब बुलायेंगे ।

"इस प्रकार आपके गुणानुवाद-रूपी अमृतपान में मन लगाते हुए मुझे इस संसार-रूपी वैतरणी को पार करने में तनिक भी सन्देह नहीं है; परन्तु मुझे इन मन्दभाग्य मनुष्यों की पामर दशा पर बड़ी दया आती है जो भ्रमयुक्त और निराशापूर्ण विषय-भोगों के भार से दबते चले जा रहे हैं, परन्तु आपकी कथारूपी सुधा पान करना नहीं चाहते ।

"जब भगवान् ब्रह्मा जी, सारे देवता और ऋषि-मुनि भी उचित रूप से आपकी पूजा करने में समर्थ नहीं हैं तो आसुरी बुद्धि वाला मैं बालक भला किस प्रकार आपकी स्तुति कर सकता हूँ ? हे प्रभु ! मैं आपका दास हूँ । मुझमें कोई कामना नहीं है । आप मेरे स्वामी हैं । आप सारे विश्व के आधार और शासकों के भी स्वामी हैं । जिस भक्त ने संसार को त्याग दिया है और अपनी सारी कामनाओं को वश में कर लिया है, जिसके चित्त का स्वाभाविक अन्धकार आपकी उपासना और ध्यान-योग के द्वारा प्राप्त हुई सिद्धि के कारण नष्ट हो चुका है केवल उसी भक्त के हृदय-द्वार में आप प्रकट होते हैं । आप करुणा-मय, मुक्तिदाता और विपत्ति में सच्चे सहायक हैं । मैं आपके चरण-कमलों की सादर वन्दना करता हूँ । मुझे वासनाहीन बना दीजिए ।"

बालक प्रह्लाद की इस सरल प्रार्थना से भगवान् ने प्रसन्न हो कर उसे आशीर्वाद दे कर कहा—"क्योंकि तुम्हारी भक्ति शुद्ध और परम श्रेष्ठ है इसलिए मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ । अपनी भक्ति के कारण तुमने अपने पिता और इक्कीस पीढ़ियों तक

अपने पूर्वजों को तार दिया है। जिस देश में मेरा भक्त रहता है वह स्थान भी पवित्र हो जाता है। जो तुम्हारी शरण में आयेंगे वे भी मेरे भक्त हो जायेंगे।"

जो प्रह्लाद की महिमा-रूपी इस कथा को श्रद्धा, भक्ति और शुद्ध चित्त से सुनेंगे वे अमृतत्व, चिरशान्ति, परमानन्द और आत्मज्ञान प्राप्त करेंगे।

(४)

बीस आध्यात्मिक नियम

१. प्रातः ४ बजे उठें। जप तथा ध्यान करें।

२. सात्त्विक आहार करें। पेट को उचित से अधिक मत भरें।

३. जप तथा ध्यान के लिए पद्म या सिद्ध आसन में बैठें।

४. ध्यान के लिए एक अलग कमरा ताले-कुन्जी से बन्द कर रखें।

५. अपनी आय के दसवें हिस्से को दान दें।

६. श्रीमद्भगवद्गीता के एक अध्याय को नियमित रूप से पढ़ें।

७. वीर्य की रक्षा करें। अलग-अलग सोयें।

८. धूम्रपान, उत्तेजक मदिरा तथा राजसिक-तामसिक भोजन का त्याग करें।

९. एकादशी को उपवास करें या केवल दूध या फल का आहार करें।

१०. नित्यप्रति दो घण्टे के लिए तथा खाते समय भी मौन का पालन करें।

११. हर हालत में सत्य बोलें। थोड़ा बोलें, मधुर बोलें।

१२. अपनी आवश्यकताओं को कम करें। सुखी तथा सन्तुष्ट जीवन बितायें।

१३. दूसरों की भावनाओं पर आघात न पहुँचायें। सबके प्रति सदय बनें।

१४. अपनी गलतियों पर विचार करें। आत्म-विश्लेषण करें।

१५. नौकरों पर निर्भर न रहें। आत्मनिर्भर बनें।

१६. प्रातः उठते ही तथा रात्रि को सोते समय ईश्वर का स्मरण करें।

१७. अपनी जेब या गले में एक माला रखें।

१८. सरल जीवन तथा उच्च विचार का आदर्श रखें।

१९. साधुओं, संन्यासियों तथा गरीब एवं रोगी व्यक्तियों की सेवा करें।

२०. नियमित डायरी रखें। अपनी दिनचर्या का पालन करें।

इन बीस शिक्षाओं में ही योग और वेदान्त का सार निहित है। इनका अक्षरशः पालन कीजिए। अपने मन को ढील न दीजिए। आपको परमानन्द की प्राप्ति होगी।

सेवा प्रेम दान पवित्रता ध्यान साक्षात्कार

विश्व-प्रार्थना

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव !
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का
समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर
मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहङ्कार, काम, लोभ और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से पूर्ण करो।

सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में
इन नाम-रूपों की सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गायन करें।
केवल तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम
हमारे अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें।

शिवानन्दाश्रम का दैनिक कार्यक्रम तथा सेवा का नित्यक्रम

दिव्य जीवन सङ्घ के प्रमुखालय-आश्रम में व्यक्तिगत तथा सर्वसामान्य के हित और समृद्धि के लिए परम्परागत रीति से निर्दिष्ट प्रार्थनाओं के साथ दिन प्रारम्भ होता है। प्रार्थना के साथ ध्यान भी संलग्न रहता है। ४-३० से ६ बजे तक के इस प्रातःकालीन कार्यक्रम के पश्चात् मन्दिर में पूजा होती है तथा योगासन के वर्ग चलते हैं। योग तथा वेदान्त के विभिन्न विषयों तथा सामान्य आध्यात्मिक साधना के प्रशिक्षण के दैनिक वर्ग प्रातः ७ से ८ बजे तक और सायङ्काल को ४ से ५ बजे तक चलते हैं। आश्रम के ध्यान-महाकक्ष में सायङ्काल के ६ बजे से ७ बजे तक ध्यान का दैनिक वर्ग चलता है। रात्रि में ७-३० से ६-३० तक होने वाला सत्सङ्ग सार्वजनिक है और इसमें सङ्कीर्त्तन, भजन, प्रवचन आदि जैसे आध्यात्मिक उप-गमन के सामान्य विषयों का तथा तात्कालिक स्थिति की माँग के अनुकूल कतिपय परिवर्त्तनीय विषयों का समावेश होता है।

आश्रम के स्थायी निवासियों के लिए, इन नियमित वर्गों में सम्मिलित होने के अतिरिक्त संस्था के मुद्रणालय, प्रकाशन, औषधि-निर्माण, चिकित्सालय, अन्नक्षेत्र, स्वागत, महामन्त्र का अखण्ड कीर्त्तन, मन्दिर-पूजा, पुस्तकालय, पत्रिका-वितरण उपविभाग, शाखा तथा सदस्यता उपविभाग, निःशुल्क साहित्य, गौशाला तथा कृषि, लेखा, डाक-प्रेषण आदि जैसे विभिन्न सेवा-विभागों में अपने निर्दिष्ट कार्य होते हैं। आश्रमवासी इन सेवाओं में प्रतिदिन कई घण्टे कार्य करते हैं।

एक महत्त्वपूर्ण कार्य जो परमाध्यक्ष श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज मुख्य रूप से करते हैं वह है जिज्ञासुओं तथा सामान्य जनता में जीवन के उच्चतर ज्ञान के प्रसार के लिए देश के विभिन्न भागों में और कभी-कभी विदेश में सांस्कृतिक यात्राओं का कार्य।

संस्था अपनी प्रबन्धकीय प्रास्थिति में जो अन्य सेवाएँ करती है वे हैं: विद्यार्थियों की उनके अध्ययन चालू रखने में सहायता करना, वास्तविक आवश्यकता के अवसरों पर अपेक्षित रूप से दान देना, हिमालय के तीर्थ स्थानों की यात्रा करने वाले निर्धन तीर्थयात्रियों को आवश्यक प्राणिक सुविधाएँ दान के रूप में यथावश्यक सहायता करना। इस क्षेत्र के कुष्ठरोगियों के सहायता-कार्य में परमाध्यक्ष स्वामी जी जो गहन रुचि ले रहे हैं, वह सर्वविदित है।

संस्थापक परम पावन श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का यह महान् सेवाश्रम मानव-जीवन के शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों में मूल्यों के पुनरुत्थान पर बल देता है। श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की रचनाएँ उनके जीवन-काल से ही भव्यतर विचार तथा उच्चतर जीवन यापन के लिए प्रभावशाली प्रोत्साहन का कार्य करती रही हैं।

श्री गुरुदेव का यह आदर्श-वाक्य 'ईश्वर सर्वप्रथम, संसार इसके अनन्तर और स्वयं व्यक्ति सबसे अन्त में" वैयक्तिकता से समाज के विशालतर विश्व की, तथा विश्व से विराट् पुरुष की वैश्व सत्ता की दिशा में प्रगति करने में आदर्श मानव-आचरण की विधियों का कदाचित् समाहार प्रस्तुत करता है।

योग-वेदान्त
(हिंदी मासिक-पत्र)

संस्थापक—परम पावन श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती
सम्पादक—श्री स्वामी चन्द्रशेखरानन्द सरस्वती
वार्षिक चन्दा : रुपये ७.००

यह पत्र शिवानन्द हिन्दी-साहित्य का अनमोल रत्न है। 'योग-वेदान्त-आरण्य-अकादमी' का मुख-पत्र होने से इसमें सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, योग और वेदान्त-विषयक सुवोधगम्य सामग्री रहती है।

योग के जटिल अर्थ को साधारण जन-समाज में सरल रीतियों से समझाने के लिए यह उत्तम माध्यम है। अपने पवित्र विचारों को ले कर यह पत्र नवीन आध्यात्मिक युग की शङ्खध्वनि सुनाता है।

इस पत्र में सर्वसाधारण के लेखों को प्रकाशित नहीं किया जाता है; किन्तु अनुभव के आधार पर जो लेख लिखे गये हों और जिनके विचारों की पृष्ठभूमि ठोस और प्रामाणिक हो, ऐसे लेखों को ही इस पत्र में प्रकाशित किया जाता है। जीवनोपयोगी व्यावहारिक सिद्धान्त को प्रकट करने वाले लेख पत्र में अवश्य प्रकाशित किये जाते हैं।

यह पत्र किसी सम्प्रदाय-विशेष का प्रतिनिधित्व नहीं करता, किन्तु विश्वात्म-भावना के उद्देश्य को अङ्गीकार कर, केवल उसी सिद्धान्त का हर रीति से प्रतिपादन करता है।

योग-वेदान्त,
दिव्य जीवन सङ्घ, पो० शिवानन्दनगर—२४९ १९२
जिला—टिहरी-गढ़वाल (उ. प्र.)

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

८ सितम्बर, सन् १८८७ को विश्वमञ्च पर प्रथम ... देखा; परिवार के लोग उनको कुप्पूस्वामी कहते थे, जो का... स्वामी शिवानन्द सरस्वती के नाम में दिग्विश्रुत हुए। जनता की ...भौतिक चीत्कार ने उनको मलाया बुलाया और वैदिक गीतों की सनातन-परम्परा ने उनको हिमालय की ओर प्रेरित किया। १० साल तक विकट तपश्चर्या कर, आत्म-संयम और आत्मशुद्धि के वातावरण से अनवरत-ध्य... में समाधिस्थ होते हुए उनको ज्ञानोज्ज्वल-प्रज्ञा की अनुभूति हुई।

अपना ज्ञान जनता को देने और निष्काम कर्म-प्रणाली के आधार पर समाज और राष्ट्रों की मानवता का निर्माण करने सन् १९३६ में उन्होंने 'दिव्य जीवन सङ्घ' को जन्म दिया और कालान्तर में स... १९४८ में 'योग-वेदान्त-आरण्य-विद्यापीठ' सदृश अद्वितीय संस्था को उद्यत होते देखा। आज वे ग्रन्थकार के नाते ३०० गम्भीर ग्रन्थों के प्राणदाता हैं; जिनमें उनके जीवन की विशाल ज्ञान-ज्योति बिम्बित होती है और जो साधारण-से-साधारण मानव का भी पथ-प्रदर्शन करती है। अपने हृदय को मानव-समाज के विकास के लिए अक्षरों का स्वरूप दे कर, वे विशाल विश्व के तीर्थयात्री को मार्ग तो दिखा ही रहे हैं; अन्धकार में नवीन प्रभात तो ला ही रहे हैं; साथ-साथ वे प्रत्येक सत्यशील—परन्तु यातनातप्त साधक के चिर सहयात्री भी रहे हैं—जिनका शब्द उसे प्रोत्साहन और अभिप्रेरणा देता, जिनकी कृपाकटाक्षवीक्षणलहरी उसको दिव्य बना देती, स्वर्ण-मय कर देती है। आज तो वे विश्व के गुरुदेव हैं जिनकी ब्रह्माण्ड-व्यापिनी विजय-वैजयन्ती के नीचे सभी धर्म, सभी सम्प्रदाय और सभी वर्ण तथा सभी मनुष्य अपना-अपना आश्रय खोज रहे हैं—और निस्सन्देह भविष्य भी उनकी अवतार-कथा को घर-घर गायेगा। उन्होंने अपने दिग्विजयी व्यक्तित्व को परात्पर-जीवन में तन्मय कर दिया।

१४ जुलाई, १९६३ को आप महासमाधि में लीन हो गये